प्रथम अध्याय

समकालीन महिला उपन्यासकार और डॉ० राज बुद्धिराजा

प्रथम अध्याय

समकालीन महिला उपन्यासकार और डॉ॰ राज बुद्धिराजा

1.1 व्यक्ति परिचय :

हर साहित्यकार के कृतित्व की मूल चेतना समाज-सापेक्ष होने के कारण उसके कृतित्व में समाज-जीवन का चित्रण होता है। लेकिन समाज-जीवन के साथ-साथ रचनाकार के व्यक्तिगत जीवन एवं अनुभव की कृतित्व में अहं भूमिका रहती है। साहित्यकार और समाज एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। जिस रचनाकार की जड़े समाज में गहरी समाई है, वहीं सच्चा रचनाकार या साहित्यकार हैं।

डॉ॰नेमिचंद्र जैन के अनुसार - "श्रेष्ठ साहित्य साहित्यकार की सच्ची अनुभूति की उपज है। जिस सत्य के साथ लेखक ने स्वयं पूरी तीव्रता के साथ साक्षात्कार नहीं किया, उसे लेकर मार्मिक और सार्थक साहित्य की रचना उसके लिए संभव नहीं है।"[1] इसलिए मार्मिक और सार्थक साहित्य निर्माण के लिए रचयिता की भावनाओं और संवेदनाओं को सत्य के साथ स्वयं साक्षात्कार करना आवश्यक हैं। तभी साहित्यकार समाज के साथ सामंजस्य स्थापित करता है। जो साहित्यकार समाज-जीवन और व्यक्तिगत-जीवन में परस्पर सामंजस्य कर साहित्य लेखन करता है, वह साहित्य उत्कृष्ट दर्जे का माना जाता हैं और उस साहित्यकार को श्रेष्ठ साहित्यकार। श्रेष्ठ साहित्यकार के परिप्रेक्ष्य में पाकिस्तान के सुप्रसिद्ध साहित्यकार अहमद वशीर का कथन द्रष्टव्य है- "सच्चा लेखक दिल की जमीन में दर्द गूँधता है। कागज को अपने भीतर के भेद को बताता है तो पढ़नेवालों के जहेन में रोशनी के फूल खिल उठते हैं और जीवन में जागृति की खुशबू फैल जाती है।"[2] इससे पता चलता है कि साहित्यकार के व्यक्तित्व और कृतित्व का घनिष्ट संबंध होता है।

डॉ॰ राज बुद्धिराजा उन महिला साहित्यकारों में से एक हैं जिन्होंने आधुनिक नारी की मन:स्थिति, पारिवारिक जीवन, पति-पत्नी के संबंध आदि विषयों के अपने अनुभव

के सीमित परिवेश के अंतर्गत साहित्य रचना की है। डॉ०राज बुद्धिराजा जैसे बहुआयामी, रचनाधर्मी, प्रतिभाशाली साहित्यकार के व्यक्तित्व का सही-सही आकलन उनके कृतित्व को समझने के लिए आवश्यक है। अत: राज बुद्धिराजा का जीवन परिचय देखना आवश्यक है।

1.1.1 जन्म-तिथि तथा जन्म-स्थान :

ख्यातनाम लेखिका राज बुद्धिराजा का जन्म लाहौर के अनारकली बाजार में 16 मार्च, 1937 में साधारण जमींदार के परिवार में हुआ। इनका जन्म सातवे महीने में होने के कारण वह अत्यंत क्षीण थी। डॉ० राज बुद्धिराजा अपने जन्म के बारे में लिखती है- "मैं सतमाही पैदा हुई थी। सबने यही सोचा कि दो-चार साँस लेने के बाद मैं इस दुनिया से चली जाऊँगी, पर ऐसा नहीं हुआ। हर सुबह मुझे जीवित देखने पर सबको हैरत होती।"[3] राज जी कोमल शरीर की थी, जिसके कारण उन्हें जन्म से ही नरम रूई में लपेटकर रखा गया और कपास के फांहों से ही दूध पिलाया गया।

इस तरह डॉ० राज बुद्धिराजा जन्म से ही जिंदा रहने की कोशिश में लगी रही तथा मृत्यु से संघर्ष करती रही।

1.1.2 पिता :

डॉ० राज बुद्धिराजा के पिता का नाम 'गणेशदास अग्निहोत्री' है। राज के दादाजी सरल स्वभाव के व्यक्ति होने के कारण वह अपनी पुश्तैनी जायदाद को खो बैठे; जिसके कारणवश गणेशदास जी को किशोर उम्र में ही मेहनत करनी पडी। इस संदर्भ में राज बुद्धिराजा का कथन द्रष्टव्य है - "मेरे दादा बहुत सरल होंगे इसी सरलता में वे अपनी जमींदारी गँवा बैठे। मेरे पिता को कम उम्र में रोजी-रोटी के लिए लाहौर की तरफ जाना पडी विपत्ति के क्षणों में जब अपनी छाया भी साथ छोड़ देती है तब दादी ने स्वर्णाभूषणों को दाँव पर लगाकर कुछ रूपये जुटाये जिससे मेरे पिता ने कारोबार शुरू किया।"[4] इस तरह गणेशदास जी व्यवसाय में जुटे रहे। इसके बावजूद गणेशदास जी अध्ययन में भी लगे रहे।

आर्यसमाज के प्रभाव के कारण गणेशदास जी महिला शिक्षा के समर्थक थे। किंतु देश-विभाजन की घोर भयंकरता के फलस्वरूप अपने घर की महिला सदस्यों को बाहर

नहीं भेजते थे। उन्होंने अंग्रेज और अंग्रेजी का विरोध किया। राज के पिताजी का गाँव - 'कोटअद्दू' मुलतान राज्य, जिला मुजफरगढ़ में था (अब पाकिस्तान में)। वहाँ के रेल्वे स्टेशन पर यात्रियों को पीने का पानी नहीं मिलता था। तब गणेशदास जी ने अपने साथियों की सहायता से यात्रियों के लिए पीने का पानी उपलब्ध करवाया। इसीलिए 'कोटअद्दू स्टेशन' को यात्री 'पानीवाला स्टेशन' के नाम से संबोधित करने लगे।

गणेशदास जी अनुशासन-प्रिय होने के कारण उनकी आज्ञा के बिना परिवार में पत्ता तक नहीं हिलता था। वे पैसे और समय के महत्व से भली-भाँति परिचित थे। वे अनुशासन-प्रिय व्यक्ति के लिए मक्खन के समान कोमल थे, तो अनुशासनहीन व्यक्ति के लिए वज्र से भी अधिक कठीण जान पड़ते थे। महाप्रभु आश्रित जो के प्रभावस्वरूप वे जीवन के प्रति आध्यात्मिक दृष्टिकोण रखते थे। वे स्वयं संस्कृति और शिष्टाचार के उपासक थे।

अत: पिता गणेशदास अग्निहोत्री से राज बुद्धिराजा को संस्कृति, शिष्टाचार, नारी शिक्षा, अनुशासनप्रियता के संस्कार विरासत के रूप में मिलें।

1.1.3 माता :

डॉ॰राज बुद्धिराजा की माँ का नाम-'शांतिदेवी' था। शांतिदेवी जी पढ़ाई -लिखाई में रूचि रखने के साथ ही अतिथि को आदर-सम्मान करने में स्वयं को धन्य मानती थी। शांतिदेवी जी आठवीं कक्षा तक पढ़ी थी। उन्होंने हिंदी, अंग्रेजी, उर्दू, पंजाबी भाषाएँ सीख ली थीं। वह स्वादिष्ट भोजन बनाकर खिलाने में रूचि रखती थी।

1.1.4 बचपन :

हर व्यक्ति के जीवन में जिस तरह ननिहाल और ददिहाल का प्रभाव रहता हैं, उसी प्रकार राज जी के जीवन पर भी दोनों का प्रभाव रहा हैं। राज जी अपने ननिहाल की बचपन की स्मृतियों को कुरेदती हुई कहती है कि - "मेरा ननिहाल एक छोटा-सा गाँव था। खजूरों के हरे -भरे पेड़ पीलुओं के घने झाड, देशी और लाहौरी काँटेदार बेरियाँ, खेतों को स्पर्श करती कस्मियों (छोटी नदी) की लहरें आज भी मेरे मन में बसी हुई हैं।"[15] राज जी का बचपन अपने छोटे भाई के साथ गाने-गुनगुनाते, आँख-मिचौली खेलते गुजर गया।

SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR.

ददिहाल में दादी के गोद में बैठकर राज जी कहानियाँ सुना करती थीं। दादी जब जड़ी-बुटियों से लोगों का इलाज करती तब राज जी अपने सपनों में खोई-खोई रहती थीं। उन्हें लगता कि वह आसमान में परियों के समान यात्रा कर रही हैं।

बचपन में जब छोटी राज गुड़ियों का खेल खेला करती थी, तो वह इंदिरा गांधीजी का रौबीला व्यक्तित्व देखकर प्रभावित हो जाती थी। वह स्वयं को दर्पण में देखती हुई कहती कि-"एक और मैं थी जिसकी गुडियाएँ पाकिस्तान में छूट चुकी थीं और दूसरी ओर इंदिरा गांधी, जिनकी गुडियाएँ सोने के आभूषण पहनती थी।"[6]

ददिहाल में गुजरे बचपन को राज जी अपनी स्मृतियों में खजाने के भाँति सुरक्षित रखती हैं।

1.1.5 संस्कार :

राज जी के पिता राष्ट्रभक्त थे। वे परिवार में हर सदस्य को चरखेपर पुनिया काते बिना खाना नहीं दिया करते थे। जिसके फलस्वरूप राज बचपन में चरखा चलाना सीख गयी थीं। 1942 ई. में 'भारत छोड़ो आंदोलन' शुरू हुआ जिस से राज जी बचपन में ही जुड़ गयी और स्वदेश के संस्कार तथा स्वदेशी से भी। माँ तथा बुआ के राष्ट्रीय गीत गाने के कारण राज पर राष्ट्रीयता के संस्कार बचपन से ही होते रहें। परिवार का सात्विक खान-पान और महाप्रभू आश्रित जी के आशीर्वाद स्वरूप राज पर धार्मिक संस्कार होते गए।

आर्थिक अभाव में बचपन व्यतीत करने पर भी माता-पिता, बुआ, दादी, आदि पारिवारिक सदस्यों से प्राप्त संस्कार ही डॉ॰राज बुद्धिराजा के जीवन की अनमोल निधि हैं।

1.1.6 शिक्षा :

राज के पिता तथा माता दोनों पढ़े-लिखे व्यक्ति थें। राज की माता स्वयं आठवीं कक्षा तक पढ़ने के साथ-साथ हिंदी, अंगेजी, उर्दू, पंजाबी भाषाएँ जानती थीं। उनकी माँ से ही उन्हें शिक्षा के संस्कार मिलते रहे।

'कोटअद्दू' गाँव में ही पंडित लोकनाथ वाचस्पति के पास राज ने गणित की शिक्षा प्राप्त की। अपनी शिक्षा के संदर्भ में उनका मंतव्य है- "वहीं मैंने वाचस्पति जी से

गणित सीखा। साथ में थोड़ी उर्दू, हिंदी और पंजाबी भी। भूगोल सीखाने का उनका अद्भुत तरीका था। लाहौर और मुल्तान से लईये तक के वीच कौन-कौन से स्टेशन आते थें और उस स्टेशन की क्या-क्या विशेषताएँ थी, उनको जानना ही भूगोल सीखना होता था। एक ही दिन में परीक्षा हो जाती थी।"[7] उस जमाने में मौखिक परीक्षा के लिए एक अंग्रेजी महिला आ कर शारीरिक स्वच्छता को देखती थी। ऐसे स्कूल में राज जी ने पढ़ाई की। जब अत्यंत कठीण परिस्थितियों में नियमित विद्यार्थीनी के रूप में शिक्षा ग्रहण करना मुश्किल हुआ तो उन्होंने बहिस्थ: विद्यार्थीनी के रूप में दसवीं कक्षा से पीएच०डी० तक की उपाधियाँ प्राप्त की।

1.1.7 वैवाहिक जीवन :

डॉ०राज बुद्धिराजा के पति का नाम-शिवप्रताप बुद्धिराजा है। राज का विवाह उनकी सोलह साल की उम्र में याने सन् **1953** ई० में शिवप्रताप जी से हुआ था। शिवप्रताप बुद्धिराजा अपने तीन भाईयों में सबसे बड़े हैं। शिवप्रताप जी ने एम०ए०, एल० एल०बी० तथा एम०बी०ए० की उपाधियाँ प्राप्त की हैं। वे दिल्ली परिवहन में नौकरी करते थे।

डॉ०राज़ बुद्धिराजा जी अपने विवाह के समय की मानसिकता को स्पष्ट करती हुई लिखती हैं कि - "इससे पहले कि मैं गुड़िया के संसार से निकल पाती कि इक्कीस रूपये, नारियल, गुड़ की ढेली और एक-दो दर्जन केला-संतरा देकर मेरा व्याह तय कर दिया गया। घर के लोग खुश थे कि बोझ टला। मैं दु:खी थी कि बोझ बढ़ा।"[8] अत: कहने की आवश्यकता नहीं कि राज जी को विवाह कर्तव्यों का बोझ लगता है।

विवाह के उपरांत राज जी को वैवाहिक जीवन आर्थिक अभाव में बीता है। ससुरालवालों के सक्त प्रतिवंधों को राज जी को निभाना पड़ा है। वे सुबह चार वजे से काम में जुट जाती और रात के बारह बजने के बावजूद तक अतिथियों के मान-सम्मान के प्रति जागृत रहती थी, किंतु अतिथिगण राज जी को गँवार लड़की की हैसियत से देखते थे।

राज जी के पति-शिवप्रताप जी में पुरूषत्व का अहंकार मर्यादा से अधिक था। वह अपनी पत्नी की अपेक्षा परिवार के अन्य सदस्यों के प्रति अधिक झुकाव रखते थे। इस बात को पुष्प से अधिक कोमल मन की राज जी स्वीकृत न कर सकी। लेकिन वास्तविक

रूप में राज जी ने उनके प्रति उनके पति के दृष्टिकोण को अपने साहित्य-कृतियों के सृजन की प्रेरणा स्वीकृत किया है।

राज जी ने विवाह के पहले सपनों में जिस राजकुमार की कल्पना की थी, यथार्थ ज़ीवन में वह उन्हें कभी मिल न सका। किंतु धरतीवाला राजकुमार उन्हें अवश्य मिला, अपने शब्दों की चाबुक से पीठ को लहुलुहान कर देता है। इस पीड़ा को उन्होंने दुसरों में बाँटना नहीं चाहा। इस दर्द का प्रचार कर नियंता या विधाता के न्याय के प्रति असम्मान व्यक्त करना राज जी को समुचित नहीं लगता। ईश्वर की कृपा से जो भी भला-बुरा राज जी को प्राप्त हुआ हैं, उसे वह सानंद के साथ, सम्मानपूर्वक ग्रहण करती है और करना भी चाहिए, ऐसा उनका मानना है।

वस्तुत: वैवाहिक जीवन व्यतीत करने के प्रति राज जी की कोई विशेष चाह आरंभ से ही दिखाई नहीं देती। किंतु फिर भी वैवाहिक जीवन को विधाता का प्रसाद मानकर उसे भली-भाँति निभाती रही है। उनकी जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टि रही है।

1.1.8 रहन सहन तथा खानपान :

डॉ॰राज बुद्धिराजा के पिता गणेशदास आर्यसमाजी थे। उनके प्रभाव स्वरूप साफ सुथरापन, शाकाहार, अग्निहोत्र व्रत, धार्मिकता, व्रत-पूजा, वेदों का पाठ आदि राज जी के जीवन के अनिवार्य अंग बन गए थे।

लीना महेंदले जी का राज के रहन-सहन के बारे में एक कथन द्रष्टव्य है- "पिता का 'अग्निहोत्र' व्रत था। सो घर में पूजा-पाठ, वेद अध्ययन इत्यादि था। इसी संस्कार का फल है कि आज भी डॉ॰बुद्धिराजा के घर में वर्ष में एक बार तीन दिनों तक सामगायन का आयोजन होता है।"[9]

राज जी की बाल-सखी कांती अग्रवाल जी उनके रहन-सहन के बारे में 'भारत-जापान की सांस्कृतिक सेतु' में लिखती है कि - "अत: उसका जीवन जीना एक जन सामान्य से कुछ हटकर, जीवन में मधुरता, सादगी, सरलता से ओतप्रोत था जो हर जनमानस को अपनी ओर आकर्षित करता था।"[10]

अत: डॉ०राज बुद्धिराजा का रहन-सहन तथा खानपान सर्वसाधारण रहा है।

1.1.9 नौकरी :

डॉ०राज बुद्धिराजा के विवाह के पश्चात् उन्हें वैवाहिक जीवन में आर्थिक अभावों का सामना करना पड़ा ; जिसके फलस्वरूप नौकरी की आवश्यकता उन्हें महसूस होने लगी। वस्तुत: विवाह के दो वर्ष के उपरांत उन्होंने सोच रखा था कि खुद की रोजी-रोटी खुद कमाना है और खुद को स्वयंनिर्भर बनना हैं। इसी कारण डॉ० राज बुद्धिराजा ने नौकरी करने का निर्णय लिया।

डॉ०राज बुद्धिराजा ने दौलतराम कॉलेज, नई दिल्ली की हिंदी अध्यापिका के रूप में सन् 1967 ई० में अध्यापन क्षेत्र में पहला कदम रखा। इस कॉलेज में सन् 1967 ई० से सन् 1968 ई० तक हिंदी अध्यापिका के रूप मे कार्यरत रहने के पश्चात् सन् 1969 ई० से वह कालिंदी महाविद्यालय में हिंदी अध्यापिका के रूप में कार्यरत रहीं। राज जी ने 50,000 से अधिक अहिंदी भाषी लोगों को हिंदी भाषा पढ़ाने का स्तुत्य कार्य किया हैं, जिसके लिए वह सदैव प्रशंसनीय हैं।

राज जी ने सन् 1967 ई० से आज तक तोक्यो, रोम, पॅरीस्, दिल्ली, लंदन, मॉरिशस आदि देशी-विदेशी विश्वविख्यात विश्वविद्यालयों के छात्र-छात्राओं को अपने विचारों से परिचित कराया हैं। उन्होंने सन् 1981 ई|० से सन् 1983 ई० तक तोक्यो विश्वविद्यालय जापान और सन् 1982 ई० से सन् 1983 ई० तक जापान की फॉरेन मिनिस्ट्री में हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति का अध्यापन कार्य किया हैं। इसी तरह रोम, लंदन और पॅरीस में सन् 1989 ई० से सन् 1990 ई० तक हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति का अध्यापन करती रही। इस के अतिरिक्त उन्होंने 15,000 से अधिक विदेशी युवक-युवतियों, छात्र-छात्राओं तथा अध्यापक-अध्यापिकाओं को हिंदी भाषा और भारत वर्ष की संस्कृति का अध्ययन कराया हैं।

'भारत-जापान सांस्कृतिक परिषद' की अध्यक्षा के रूप में डॉ०बुद्धिराजा ने कार्य किया हैं। कालिंदी महाविद्यालय, दिल्ली के द्वारा गठित 'नॉन कॉलेजिएट वुमन्स

एज्युकेशन बोर्ड' की संयोजिका के रूप में नौ साल कार्यरत रही। आजकल डॉ०राज बुद्धिराजा अवकाश प्राप्त हैं।

इस तरह डॉ० राज बुद्धिराजा ने हिंदी भाषा का अध्यापन, भारतीय संस्कृति का अध्यापन तथा भारत-जापान सांस्कृतिक एकता का सफल प्रयास किया है। जिससे देशी-विदेशी लोग लाभान्वित होते रहे हैं।

1.2 व्यक्तित्व की विशेषताएँ / पहलू :

हर व्यक्ति के व्यक्तित्व के दो भाग होते हैं - अंतरंग व्यक्तित्व और बहिरंग व्यक्तित्व। व्यक्ति की रहन-सहन, खानपान, कृति, कार्य आदि द्वारा व्यक्ति के अंतरंग को जाना जा सकता हैं, तो बहिरंग व्यक्तित्व व्यक्ति को देखने से पता चलता है। हर व्यक्ति का बहिरंग व्यक्तित्व उसके अंतरंग व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति करता हैं।

डॉ०राज बुद्धिराजा का बाह्य व्यक्तित्व अत्यंत प्रभावशाली होने के कारण उनसे मिलनेवाले हर व्यक्ति पर उनका प्रभाव दृष्टिगत होता हैं। डॉ०बुद्धिराजा से प्रभावित होकर अनु कथूरिया लिखती है - "काली सिल्क की साड़ी पर काले ही रंग की जैकेट पहने थी जिस पर रंग-बिरंगे धागों से कढ़ाई की गई थी। कलाइयों में बहुत पतली सोने की चूड़ियाँ और उंगली में तीन छोटे-छोटे हीरों की अंगूठी। संपूर्ण व्यक्तित्व ऐसा कि पहली ही नजर में आप सम्मोहित हो जाए।"[11]

डॉ०राज बुद्धिराजा के साहित्य का अध्ययन करते समय उनके व्यक्तित्व की विशेषताओं को जान लेना आवश्यक हैं; तभी हम उनके साहित्य का समुचित अध्ययन करने में सफलता पा सकते हैं। डॉ० राज बुद्धिराजा के व्यक्तित्व की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं -

1.2.1 विनयशीलता :

डॉ०राज बुद्धिराजा पर बचपन से ही विनम्रता के संस्कार हुए हैं। घर पर आनेवाले हर अतिथि के साथ वह विनयशीलता के साथ पेश आती हैं। 32 किताबें, और हजारों लेख लिखनेवाली तथा देश-विदेश में मान सम्मान से गौरवान्वित होनेवाली डॉ०राज

बुद्धिराजा के व्यक्तित्व को अहंकार की दुर्गंध संस्पर्श नहीं कर सकी है। अपने परिचय में आनेवाले हर व्यक्ति को उनकी विनम्रता ने प्रभावित किया है।

डॉ० पुष्पलता वर्मा का एक कथन द्रष्टव्य है - "वैसे तो बुद्धिराजा जी के मित्रों की संख्या अनगिनत होगी क्योंकि समाज के हर क्षेत्र के प्राणी उनके मित्र हैं।"[12] राज जी की विनम्रता के कारण उनके मित्रों की संख्या बढ़ती रही है।

डॉ. पुष्पलता वर्मा राज जी के व्यक्तित्व के संदर्भ में लिखती है कि - "कॉलेज को भी आप पर गर्व है कि साहित्य की जानी मानी हस्ती तीस से अधिक पुस्तकों की लेखिका और कई सौ पत्र-पत्रिकाओं में छपनेवाली विदुषी हमारे ही कॉलेज से हैं। इतना सब होने पर भी कहीं गर्व नहीं, कहीं अहं नहीं अपितु विनम्रता और सरलता ही रहती है उनके व्यवहार में।"[13] इस प्रकार राज जी के व्यवहार में कहीं भी अहम् का नामोनिशान तक दृष्टिगत नहीं होता है। हर व्यक्ति से निजी अपनेपन के साथ स्नेह से बात करना उनकी विनम्रशीलता का परिचय देता है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि राज जी अहंकारविरहित विनम्रशीलता के गुण से मंडित व्यक्तित्ववाली एक महिला लेखिका है।

1.2.2 आत्मीयता :

डॉ० राज बुद्धिराजा के व्यक्तित्व का एक पहलू है - आत्मीयता, जो उनके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग है। वह किसी भी विषय को लेकर आत्मीयतापूर्ण बातें करती रहती हैं। स्वयं के घर-परिवार से लेकर देश-विदेश तक की बातें वे करती हैं। उनका संस्मृति पर आधारित आत्मानुभूति का कथन अतीत के दिनों को लोगों के सामने ला खड़ा करता हैं।

डॉ० रेखा व्यास जी राज जी के संदर्भ में लिखती है कि - "राज जी खूब धीरे, प्यार से बोलती हैं। मन की बातें करती हैं, फोन पर भी उड़ेल देना चाहती हैं अपने को। घर परिवार की बातें, बेटी पोते की बातें, पेड़-पौधों की बातें, लेखन की बातें अपने पुराने समय की बातें, दुनियादारी से उपजी कड़वी बातें, सब दिल खोलकर बाते करती हैं ; तो उनकी यह अंतरंगता हमें भीतर से भर जाती हैं। खूब आत्मीयता का नखलिस्तान लगती है -

राज जी"[14] आज के आधुनिक वातावरण में महानगरों में आपसी आत्मीयता, लगाव दृष्टिगत नहीं होता हैं, वही राज जी आत्मीयता से संपन्न है। उनकी आत्मीयता के कारण पराया व्यक्ति भी अपनेपन की भावना से परिपूर्ण हो जाता हैं।

जब राज जी महाविद्यालय में अध्यापिका के रूप में कार्यरत थी, तब हर कर्म चारी के साथ आत्मीयता से बातचीत किया करती थी। इस प्रसंग में डॉ० पुष्पलता वर्मा का कथन द्रष्टव्य है कि - "कॉलेज में उनका व्यक्तित्व सबसे अलग रहा है। बोलती तो जरूर कम है पर जिससे भी स्टाफ में मिलती है बहुत आत्मीयता से। टीचिंग स्टाफ हो, चाहे कर्मचारी वर्ग के लोग सभी के साथ उनका भद्रता का व्यवहार होता है। इसलिए कॉलेज में भी सभी उनका सम्मान करते हैं।"[15]

डॉ० राज बुद्धिराजा के चिंतन और मनन का प्रभाव उनकी बातों पर स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है। अपनी किसी बात के कारण किसी के कोमल हृदय को आघात झेलना पड़े, यह उन्हें कभी स्वीकार्य नहीं है। हर एक परिचित-अपरिचित व्यक्ति से आत्मीयता से व्यवहार कर उसे अपनेपन से स्वीकारना और उसके हृदय में भी अपनेपन की भावना जागृत करना, डॉ० राज बुद्धिराजा के व्यक्तित्व की एक विशेषता रही है।

1.2.3 प्रसन्नचित्त और उत्साही :

राज जी की आयु 72 वर्ष हैं। किंतु इस उम्र में भी उनका उत्साह देखने लायक है। युवक-युवतियों को शरमानेवाले उत्साह के साथ राज जी वर्तमान काल में भी साहित्य सृजन में अपना सक्रिय योगदान दे रही हैं।

शशिप्रभा तिवारी राज जी के संदर्भ में लिखती हैं कि - "उम्र के इस पड़ाव पर यानी रिटायरमेंट के बाद भी वह उतनी ही प्रसन्न, उत्साह से भरी सक्रिय और युवा नजर आती है, जैसे पहले थीं। हर कार्य को स्फूर्ति और लगन से करती हैं, जो हर किसी के लिए प्रेरणादायक है। मुझे उनके व्यक्तित्व की एक और खूबी बहुत अधिक आकर्षित करती हैं, कि वह कभी भी घरेलू या शारीरिक या व्यक्तिगत समस्याओं का जिक्र किसी से नहीं करती हैं। यहाँ तक की अपनी आत्मकथा 'उत्तरोत्तर' में भी इन बातों की झलक तक नहीं मिलती

है। यह उनकी वैचारिक परिपक्वता का प्रमाण है।"[16] अत: राज जी घर-परिवार की किसी भी समस्या के होते हुए वे हर समय प्रसन्नचित्त रहती है और सभी को अपने कार्य दवारा प्रेरणा देती हैं। इसीलिए शशिप्रभा तिवारी ने राज जी को 'ताजा गुलाब' की उपमा दी है, जो सदैव प्रफुल्लित, प्रसन्नचित्त और उत्साही रहता हैं।

अंतत: कहना समुचित ही है कि डॉ० राज बुद्धिराजा एक प्रसन्नचित्त और उत्साही महिला लेखिका हैं।

1.2.4 अतिथिप्रियता :

राज जी देश-विदेश की यात्रा करती रही हैं। वह सभा, समारोह में अपना योगदान देती रही हैं। इसी कारण वश उनके इर्द-गिर्द हमेशा अतिथियों का मेला-सा लगा रहता था। अपने घर परिवार में अतिथियों का आना-जाना उन्हें अच्छा लगता था और वह उनके आवभगत में जुटी रहती। अखिलेश दविवेदी 'अकेला' जी राज जी की अतिथिप्रियता के बारे में लिखते है कि - "उनके आतिथ्य को देखकर मैं दंग रह जाता। चाहे जितने लोग आ जायें उनकी स्वागतपूर्ण मुस्कान वैसी ही रहती है।"[17]

राज जी अपने अतिथि को विविध प्रकार के पक्वान्न बना के खिलाती थीं। घर पधारे अतिथि को स्वयं गोबी के पराठे बना के खिलाना राज जी को पस्द था। वर्तमान भौतिकवादी युग में अतिथि-प्रियता की प्रवृत्ति लुप्त हो रही हैं। किंतु राज जी जैसे अतिथिप्रिय लोगों ने ही 'अतिथि यज्ञ' की परंपरा को आगे बढाया हैं। डॉ० रेखा व्यास जी उनके अतिथिप्रियता के संदर्भ में लिखती है - "राज जी खूब अतिथिप्रिय है। कवि गोष्ठी हो या कोई आयोजन वह खूब आवभगत करती है।"[18] सारांश राज जी सुरूचिसंपन्न होने के साथ ही अपने अतिथि को मान-सम्मान के साथ प्यार से खिलाती रही है।

वर्तमान महँगाई के जमाने में अथितिप्रियता की प्रवृत्ति लुप्त होती दिखाई देती है, वहीं राज जी अपने व्यवहार के दवारा 'अतिथि देवो भव:' को प्राचीन परंपरा को खुशी से आगे बढ़ा रही है।

SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR.

1.2.5 कर्तव्यनिष्ठ :

डॉ० राज बुद्धिराजा ने पारिवारिक कर्तव्यों को ससुराल की प्रतिकूल परिस्थितियों में भी भली-भाँति निभाती रही हैं। आर्थिक विपन्नता के बावजूद घर-परिवार की जिम्मेदारियों को निभाने में राज जी ने कोई कसर नहीं छोडी। राज जी की पुत्री- सुनिता अपनी माँ के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हुई कहती है- "जिंदगी के किसी एक मोड़पर सबकुछ छुट गया। मेरे साथ रही तो केवल मेरी माँ, मेरे हर आँसू, हर मुस्कान मे साथ-साथ। अपनी सीमित साधनों में उन्होंने हमेशा मुझे शिखर पर पहुँचाया।"[19]

पारिवारिक कर्तव्यों के साथ ही वह अपने व्यावसायिक कर्तव्यों को भी सजगता के साथ पूरा करती रही हैं। महाविद्यालय की अध्यापिका के कर्तव्यों को वह समय-समय पर उत्साह के साथ निभाती रही हैं। इस संदर्भ में कालिंदी महाविद्यालय की प्राचार्या डॉ० मालती जी का कथन द्रष्टव्य है - "अपने कार्यकाल में उन्होंने अनेक गंभीर जिम्मेदारियों को निभाया और मेरे कार्यकाल के पाँच से कुछ समय के कार्यकाल में उन्होंने कॉलेज में जिन साहित्यिक-सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया वे स्तर और सराहना दोनों दृष्टियों से उत्कृष्ट सिद्ध हुए। मैं प्राचार्य और व्यक्ति दोनों दृष्टियों से डॉ० राजकुमारी बुद्धिराजा की प्रशंसिका हूँ और कामना करती हूँ कि उनका जीवन सौंदर्य और सद्भावना के नए कीर्तिमान स्थापित करता रहे।"[20]

लेखिका राज बुद्धिराजा ने अपने सम-सामायिक समस्याओं को अपनी मानवीय संवेदना के साथ कृतियों में उतारा है। उनके लेखन में आत्मानुभूति की अभिव्यंजना मिलती है। वह अपने सम-सामाजिक समाज के प्रति सजग रहती है, जिससे वह सामाजिक कर्तव्यता का पालन करती है। इसी कारण वह एक कर्तव्यनिष्ठ लेखिका है।

डॉ०राज बुद्धिराजा ने समय-समय पर पारिवारिक, सामाजिक, महाविद्यालर्यान कर्तव्यों का पूरी सजगता के साथ पालन किया है, जिसके कारण अनेक देश-विदेश की संस्थाओं ने उन्हें मान-सम्मान प्रदान किए हैं। डॉ० राज बुद्धिराजा कर्तव्यनिष्ठ लेखिका तथा अध्यापिका रही हैं।

1.2.6 प्रकृति-प्रिय :

डॉ० राज बुद्धिराजा का व्यक्तित्व का एक अन्य पहलू है - प्रकृति से लगाव। राज जी का बचपन गाँव के प्राकृतिक वातावरण में बिता है। जड़ी-बूटी के द्वारा बीमारी का इलाज करना, उनकी दादी जानती थी। वह अपनी ननिहाल के प्राकृतिक सौंदर्य को अभी-भी नहीं भूली है- "खजूरों के हरे-भरे पेड़, पिलुओं के दोनो घने झाड़, देशी और लाहौरी काँटेदार बेरियाँ, खेतों का स्पर्श करती कस्सियों (छोटी नदी) की लहरें आज भी मेरे मन में बसी हुई हैं।"[21]

प्राकृतिक प्रेम के कारण ही राज जी जापान के साकुरा के फूलों के प्रति आकर्षित हुई। इसी आकर्षण के कारण वश राज जी ने जापान की पुष्पसज्जा की कला को बड़े चाव से सीखा और उस कला को अपने भारत देश में समय-समय पर प्रदर्शित किया।

'भारत-जापान की सांस्कृतिक सेतु' में उनके प्रकृति प्रेम को अनु कथूरिया ने इन शब्दों में व्यंजित किया है - "डॉ० राज के अकेलेपन ने ही शायद इन्हें प्रकृति प्रेमी बना दिया। उनके घर के आँगन में हर तरह से फूल, पेड़-पौधे सुगंधित व सुवासित होते रहते हैं और शायद वही सुगंधि डॉ० राज के तन-मन में बसी हुई है। उन दरख्तों की शीतल छाया को मैंने भी महसूस किया जब-जब उनके साथ रही। और उनके तन-मन में बसी सुगंधि को हर वह व्यक्ति महसूस कर सकता है, जो उनकी आंतरिक कोमलत का स्पर्श पा सका हो। और यह प्रकृति केवल उनके आँगन में ही नहीं उतरी बल्कि जहाँ-जहाँ उस प्रकृति ने उसके मन को छुआ वहाँ-वहाँ वो शब्दों में छलकर सफों पर भी उतर आई है "[22] अत: उनके व्यक्तित्व में प्राकृतिक सुगंध, शितलता दृष्टिगोचर होती है।

अंतत: कहा जा सकता है कि डॉ० राज बुद्धिराजा प्रकृतिप्रिय व्यक्तित्व की धनी हैं।

1.2.7 स्नेहिल और ममतामयी सखी :

डॉ० राज बुद्धिराजा के स्नेहिल और ममतामयी व्यक्तित्व के कारण उनके मित्रों की संख्या अनगिनत हैं। एक बार जो व्यक्ति राज जी के परिचय में आता है, वह

उनकी स्नेह और ममता के कारण मित्र बन जाता है। उनके मित्रों में ख्यातनाम साहित्यिक, राजनीतिक व्यक्ति, रिक्षावाले, आदि देश-विदेशी व्यक्ति सभी हैं। राज जी लिखती है - "संत कबीर ने भले ही न किसी से दोस्ती और न किसी से बैर वाली दुनिया का अनुभव किया हो, पर मेरे जैसे शुद्ध सांसारिक प्राणी को दोस्ती की सख्त जरूरत होती है। ऐसी दोस्ती जिसका स्पर्श पर इन्सान क्या फूलों के चेहरे भी खिल उठते है।"[23] राज जी सांसारिक प्राणी के लिए दोस्ती आवश्यक मानती है।

राज जी वह स्नेहिल और ममतामयी सखी है, जो अपने सुख-दु:ख के क्षणों को मित्रों के साथ बाँटती हैं। डॉ० पुष्पलता वर्मा का कथन द्रष्टव्य है - "अपने घर के सुख-दु:ख, खट्टे-मीठे, तीखे अनुभवों में मुझे उन्होंने अपना साझीदार माना है। उन्हीं के शद्बों में 'इस जीवन यात्रा में चलते-चलते, जिस भी हाथ ने मेरे पाँव से काँटे निकालने चाहे वे हाथ मेरे अपने हाथों से अधिक अपने हो गये। मुझे लगता है मेरा हाथ भी उनके हाथों मे शामिल हो गया है। उनके इन शद्बों से क्या नहीं लगता कि ये कितनी स्नेहिल और ममतामयी हैं।" **24**

राज जी मित्रता के बारे में कहती है - "मैं तो उस मित्रता की बात करती हूँ जब दोनों मित्र समभाव से एक-दूसरे के प्रति आकर्षित समर्पित रहते हैं। जहाँ केवल राग-नेह, आसक्ति, और गुण ही गुण है। द्वेष, क्रोध अनासक्ति और अवगुण के लिए कोई स्थान नहीं है।"[25] अत: राज जी मित्रता के लिए राग, स्नेह, आसक्ति, गुण को महत्वपूर्ण मानकर द्वेष, अनासक्ति, निंदा, अवगुण को वर्ज्य मानती है।

राज जी की बालसखी - कांती अग्रवाल ने राज जी के सहवास में अभूतपूर्व मित्रता का जो अनुभव प्राप्त किया है, उसे वह अपने जीवन का एक सुखद अनुभव मानती है। अत: राज जी एक स्नेहिल और ममतामयी सखी है।

1.2.8 आध्यात्मिक दृष्टिकोण :

डॉ० राज बुद्धिराजा के पिता-गणेशदास अग्निहोत्री तथा महात्मा प्रभु आश्रित जी के प्रभावस्वरूप बचपन से ही राज जी का दृष्टिकोण अध्यात्मिक रहा है। राज जी जीवन

की असंख्य यंत्रणाओं को सहते हुए दुर्गम घाटियों को पार करती हैं, किंतु उनकी ईश्वर के प्रति की निष्ठा बनी रही है - "वैसे तो अन्न-जल क्या सभी कुछ ईश्वर की ही देन है। मेरे संस्कार, मेरा कर्म, मेरी आस्था, मेरा अध्यापन और मेरा लेखन सभी कुछ तो उसीका है, उसी की दी हुई वस्तु से यदि मैं कभी माध्यम बन जाऊँ तो इससे ज्यादा और सौभाग्य क्या होगा ?"[26]

राज जी अपने वैवाहिक जीवन को ईश्वर का प्रसाद मानकर ग्रहण करती है। जीवन में प्राप्त मान-सम्मान के लिए ईश्वर के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए राज जी लिखती है - "अपने आस-पास के हर रंगत को देखते हुए मैं ईश्वर का धन्यवाद करती हूँ कि जो कुछ मुझे मिला वह बहुत-बहुत मिला, जो नहीं मिला उसके लिए मैं ही उत्तरदायी हूँ। इतना ज्यादा मिला कि उस पर कोई विश्वास भी नहीं करेगा।"[27] इस प्रकार राज जी ईश्वर से प्राप्त के लिए उसे धन्यवाद देती हैं, किंतु अप्राप्य के लिए वह स्वयं को उत्तरदायी मानती है। वह हर प्राप्य-अप्राप्य को ईश्वर का आशीर्वाद स्वरूप प्रसाद मानकर ग्रहण करती हैं।

1.2.9 सादगी :

डॉ॰ राज बुद्धिराजा के व्यक्तित्व का अनन्यसाधारण पहलू है - सादगी। गणेशदास अग्निहोत्री तथा आश्रित जी के प्रभाव के परिणाम स्वरूप उनका व्यक्तित्व सादगी से ओतप्रोत होना अस्वाभाविक नहीं है। राज जी के सादगीपूर्ण जीवन के संदर्भ में उनकी बाल-सखी कांती अग्रवाल का कथन द्रष्टव्य है - "उसका परिवार वेदों में पारंगत, उसी की गूँज से विभोर था तो फिर उसका प्रभाव उस पर भी होना स्वाभाविक ही था। अत: उसका जीवन जीना, एक जन सामान्य से कुछ हटकर, जीवन में मधुरता, सादगी, सरलता से ओतप्रोत था जो हर जनमानस को अपनी ओर आकर्षित करता था।"[28] राज जी अपने जीवन में साधु-संतों तथा विद्वानों को असाधारण महत्ता प्रदान करती रही हैं। वह उनसे प्राप्त आशीर्वाद की गुरूता इन शब्दों में अंकित करती है - "कोई माने या न माने लेकिन आशीर्वाद एक ऐसे धन का सागर है, जिसमें अनेकानेक धन की नदियाँ आकर मिल जाती हैं और मैं चाहती हूँ कि इस धन से मैं कभी वंचित न रहूँ।"[29]

SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR.

राज जी की मान्यता है कि - 'सादा जीवन उच्च विचार' वह इस मान्यता के अनुसार जीवन के पथ पर अग्रेसर है। उनके विचार उनकी कला-कृतियों द्वारा सहृदय पाठक के सम्मुख उपस्थित होते हैं। वह सुख के संदर्भ में कहती हैं - "वैसे सुख कोई वस्तु नहीं जिसे जब चाहा थमा दिया और जब चाहा छिन लिया। यह तो अनुभवजन्य स्थिति है जो जब-तब राहत देती रहती है।"[30] अत: वह मानती है कि सुख या दु:ख अपनी मान्याताओं पर आधृत होता हैं। मित्रता के संबंध में वह कहती है - "खून के रिश्तें हमेशा रूलाते है और दोस्ती के रिश्तें हमेशा नया घर बसाने में मदत करते हैं।"[31]

उन्होंने अपने आर्थिक अभावग्रस्त जीवन में भी किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया। जीवन में जो प्राप्त हुआ उसी में सुख खोजते हुए अपनी उन्नति का मार्ग ढूँढ़ती रही।

1.2.10 संघर्षशील :

राज जी को अपने संघर्षयुक्त जीवन में संघर्ष के लिए गणेशदास अग्निहोत्री, वीरावाली मौसी तथा जीवनी बुआ से प्रेरणा मिलती रही हैं। वह अपने जीवन में संघर्ष को गुरूता प्रदान करती है। संघर्ष के बारे में कहती है - "हर देश की धरती खुरदरी होती है, हर जगह सूरज गर्म होता है और हमें अपने लिए पेड़ की छाया खुद तलाशनी पड़ती है।"[32] अर्थात् हर किसी को सदैव संघर्ष करना ही पड़ता है और संघर्ष करते-करते अपने लक्ष्य को प्राप्त करना होता है।

उनको शिक्षा प्राप्त करने के लिए संघर्षशील रहना पड़ा है। इसके संदर्भ में राज जी लिखती है - "एक ओर उच्चकोटि का परीक्षा परिणाम था और दूसरी ओर चारदीवारी के बंधन और पैसे का घोर अभाव।"[33] इसके बावजूद राज जी ने पीएच॰ डी॰ तक की पढ़ाई पूरी की। जब वह दौलतराम महाविद्यालय, दिल्ली की अध्यापिका नियुक्त हुई तो उन्होंने खुशी में वर्फी लाई, जो उनके घरवालों ने फेंक दी। इसी समय राज जी ने दृढ़ संकल्प किया - "यह छोटा-सा घर मेरे लिए बहुत छोटा है और मुझे इस पृथ्वी के बहुत बड़े घर में जाना है जहाँ के लोग मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"[34] इसी दृढ़ संकल्प ने राज जी को

संघर्षशील जीवन में स्थिरता प्रदान करते हुए विश्वभ्रमण की शक्ति दी। उनके संघर्षयुक्त जीवनपथ पर देश-विदेश के मान-सम्मान के सुमन समय-समय पर बिखरते रहे हैं।

1.2.11 कर्मण्यशील / कर्मठ तथा स्वाभिमानी :

राज जी की सफलता की कुंजी है -कर्मण्यशीलता या कर्मठता। कर्म-निष्ठा में राज जी का विश्वास रहा है। उनकी पुत्री सुनिता अपनी माँ के बारे में लिखती है - "उनका कहना है कि 'जो भी काम करो, मनोयोग से करो, हर काम श्रेष्ठ हो।' उनकी दृष्टि में प्रथम स्थान ही महत्वपूर्ण है।"[35] राज जी ने केवल 'काम करो' का संदेश नहीं दिया, बल्कि स्वयं भी खूब मेहनत करती रहीं हैं। उनकी विविध मौलिक कला-कृतियाँ इसका प्रमाण हैं, जो उन्होंने बड़े ही मेहनत से सृजित की हैं।

स्वाभिमानी व्यक्तित्व की राज जी ने ससुराल का यंत्रणामय तथा अर्थाभावग्रस्त जीवन जीते हुए भी किसी से सहायता नहीं ली, यहाँ तक उन्होंने पितृगृह की सहायता भी ग्रहण नहीं की। वह अपने स्वाभिमानी व्यक्तित्व के संदर्भ में लिखती है - "अपने स्वाभिमानी स्वभाव के कारण मैंने किसी भी कुर्सी के नजदीक जाने की कोशिश नहीं की। मुझसे सिर्फ इतना हुआ कि मैं अपने लायक विद्यार्थी समुदाय में खोई रही, न मैं कभी तीन-चार-पाँच नकाब ओढ़कर कालिज में गई और न बिना नकाब के।"[36] राकेश नंदिनी गुप्ता राज जी के स्वाभीमानी व्यक्तित्व के संबंध में कहती है कि - "व्यक्तिगत रूप में राज जी अत्यंत स्वाभिमानी, स्वावलंबी और संवेदनशील लगती है।"[37] अत: राज जी स्वाभिमानी व्यक्तित्व की धनी है।

अंतत: कहना आवश्यक नहीं जान पड़ता कि राज जी एक स्वाभिमानी कर्मण्यशील अथवा कर्मठ व्यक्तित्व संपन्न महिला लेखिका हैं।

1.2.12 अंत:करण की उदारता :

डॉ॰राज वुद्धिराजा ने जिस तरह उदार अत:करण से स्नेह-सागर में नेहलाया हैं, उसी तरह वह हर एक को यथाशक्ति मदद करती रही हैं। वर्तमान युग में अपने अपनों को ही पहचानना नहीं चाह रहे हैं, वहाँ राज जी जैसे उदार अंत:करण वाले लोग मदद का

हाथ आगे बढ़ाते हैं।

राज जी आर्यसमाज के विचारों का आजीवन पालन करती रही हैं। इस आर्य समाज के प्रभावस्वरूप जब राज जी ने आर्यसमाज के कार्य हेतु दस हजार रूपयों का धनादेश दिया, तब उनके परिचित व्यक्ति अखिलेश दविवेदी जी विस्मित हो जाते है। राज जी के बारे में अखिलेश दविवेदी जी लिखते है कि - "मैं अक्सर वातानुकूलित कार वालों को देखता हूँ कि किसी गरीब या साधु को देखकर कारों के शीशे चढ़ा लेते हैं। धार्मिक कार्यों के लिए चंदा माँगने आये लोगों को देखकर मुँह चुराने लगते हैं। ऐसे समय में दस हजार का चेक इतने विनयपूर्वक देना विरले ही दिलवालों से होता हैं।"[38]

राज जी ने जीवन में आर्थिक अभाव के कारण अनेक संकटों का सामना किया है, फिर भी वह यथासंभव आर्थिक सहायता करती रही हैं।

1.2.13 ममतामयी तथा विद्यार्थीप्रिय अध्यापिका :

राज जी सहृदयी और संवेदनशील अध्यापिका होने के कारण उन्होंने छात्रों की रूचि परिष्कृत की, ज्ञान-विज्ञान के नये-नये स्रोतों से उन्हें परिचित करवाया, उनकी व्यक्तिगत समस्याओं को बड़ी ही खूबी के साथ हल किया है। इसी कारणवश ममतामयी तथा विद्यार्थी प्रिय अध्यापिका के रूप में राज जी का स्थान छात्रों के हृदय में बना रहा है। इस संदर्भ में उनके एक विदेशी छात्रा का पत्र द्रष्टव्य है -

"हमारी प्रोफेसर बुद्धिराजा जी आपने अपनी अकल व बुद्धि से हमें सत्य रास्ता दिखाया है। हमारे दु:ख को अव शद्धों में लिख नहीं सकती हूँ। आप हमेशा हमारे मनों में रहती हैं। आशा करते हैं, आपके मन में भी हम रहेंगे। पर अगर हम नहीं रहे फिर भी आप हमारे मनों में हैं। आप ही हमारी इज्जत लनेवाली हैं। हमारी माता जी हमारे सारे इज्जत और प्यार आपके लिए सदा होते हैं।

आपकी छोटी बेटी,

यूको हिरायशी जुही।"[39]

राज जी को उनके अनेक देशी-विदेशी छात्र-छात्राओं के पत्र आते हैं। डॉ ० कामिनी वाली जी राज जी के संबंध में लिखती है - "उनके सामने कविता हो या कोई विद्यार्थी वह एकदम शिल्पी की तरह उसे तराश देती है। उनके इसी गुण के कारण ही भगवान ने उन्हें ममतामयी प्राध्यापिका बनाया है। यह इनका व्यवसाय नहीं, आत्मा है। एक बार जो भी लोहा इनकी परिधि में आया चुम्बकीय शक्ति में समा गया। देशी ही नहीं विदेशी विद्यार्थी भी इनके साथ सदा के लिए बंध गए।"[40]

इस तरह डॉ० राज बुद्धिराजा का ममतामयी तथा विद्यार्थीप्रिय अध्यापिका का रूप सम्मुख उपस्थित होता है।

1.2.14 बहुभाषिज्ञ:

डॉ० राज बुद्धिराजा बहुमाषिज्ञ भी हैं। राज जी ने भारत के प्रथम अंतरिक्ष राकेश शर्मा के दादाजी - पंडित लोकनाथ वाचस्पति जी से उर्दू, हिंदी और पंजाबी भाषा का ज्ञान प्राप्त किया था। वह इन भाषाओं के अतिरिक्त अंग्रेजी, जापानी इन विदेशी भाषाओं से भली-भाँति परिचित थी। राज जी ने जिस तरह हिंदी में अपना बहुमोल कार्य किया हैं, उसी तरह जापानी भाषा में भी अपना योगदान दिया है।

1.2.15 संगीत तथा नाटक प्रेमी :

सहृदय संवेदनशील राज जी का संगीत के प्रति भी रूझान रहा है। उन्हें शास्त्रीय संगीत सुनने का शौक है। उनके कमरे से देर रात तक और भोर होने से पहले संगीत की आवाज आना उनके घर-परिवार वालों के लिए नयी बात नहीं है। राज जी संगीत प्रेमी रही हैं।

संगीत के साथ वह नाटकों में भी विशेष रूचि रखती हैं। किंतु उन्होंने स्वयं कोई नाटक नहीं लिखा। राज जी ने नाटक की रंगमंचीयता की ओर ध्यान देते हुए देश-विदेश में नाटकों का कुशल तथा सफल निर्देशन किया हैं। राज जी ने तोक्यो विश्वविद्यालय, जापान में विष्णु प्रभाकर द्वारा रचित 'टूटते परिवेश' और 'झांसी की रानी' इन नाटकों का सन् 1981-82 ई० में सफलतापूर्वक निर्देशन किया हैं।

1.2.16 प्रतिभासंपन्न साहित्यकार :

डॉ॰ राज बुद्धिराजा एक प्रतिभासंपन्न साहित्यकार है। उनके साहित्य में गंभीर चिंतन मिलता हैं। इस संदर्भ में डॉ॰पुष्पलता वर्मा का कथन द्रष्टव्य है - "जहाँ बुद्धिराजा जी के जीवन का एक पक्ष गंभीर चिंतन, मनन और लेखन का है वही दूसरा पक्ष सहज हास परिहास और मुक्त विचरण का है।"[41]

राज जी ने साहित्य की विविध विधाओं में अपना योगदान दिया हैं।हिंदी साहित्य की उपन्यास, कहानी, काव्य, संस्मरण, समीक्षा तथा आलोचना, आत्मकथा, यात्रावर्णन, जीवनी, आदि विधाओं में पूरी सक्षमता के साथ कलम चलायी हैं। उन्होंने जापानी साहित्य का भी सृजन किया है, साथ ही बाल साहित्य का भी। उन्होंने अनेक पुस्तकों का संपादन किया हैं। अनुवाद में भी राज जी पीछे नहीं रही हैं। राज जी के साहित्य में मानवीय-मूल्य, संवेदना, सम-सामायिक समस्याएँ आदि दृष्टिगत होते है। राज जी सम-सामायिक युग के प्रति सजग रहनेवाली प्रतिभासंपन्न साहित्यकार हैं।

1.2.17 सांस्कृतिक एकता की हिमायती :

राज जी ने अपने साहित्य तथा कार्य द्वारा सांस्कृतिक एकता का संदेश दिया हैं। उन्होंने जापानी लोगों को भारतीय संस्कृति से और भारतीय लोंगो को जापानी संस्कृति से परिचित किया हैं। इसके लिए उन्होंने अनूदित साहित्य का निर्माण किया है। साथ ही जापानी -हिंदी शब्द-कोश का भी निर्माण किया।

राज जी को सांस्कृतिक एकता के कार्य के लिए समय-समय पर पुरस्कृत किया गया है। राज जी को भारत-जापान सांस्कृतिक एकता के लिए महिला शिरोमणी (1994), ऑल इंडिया डेरावल ब्रदरहुड़ ॲवॉर्ड़ (1996), समन्वय ॲवॉर्ड़ (1999) द्वारा पुरस्कृत किया गया हैं। राज जी को सन् 2000 ई. में जापानी साहित्य तथा भारत-जापान सांस्कृतिक एकता के लिए जापानी सर्वोच्च सम्मान द्वारा पुरस्कृत किया गया है। अत: राज जी सांस्कृतिक एकता की हिमायती रही है।

अंतत: कहना समुचित होगा कि डॉ॰ राज बुद्धिराजा बहुमुखी व्यक्तित्व

संपन्न उपन्यासकार है।

1.3 कृतित्व :

डॉ॰राज बुद्धिराजा ने हिंदी साहित्य की अनेक विधाओं में अपनी सशक्त लेखनी द्वारा अपना स्थान अक्षुण्य बनाया है। बहुमुखी प्रतिभासंपन्न राज जी की कला-कृतियाँ अथवा रचना जगत् इस प्रकार है -

उपन्यास	:	1.	प्रश्नातीत - सन् - 1977 ई॰
		2.	कावेरी - सन् - 1979 ई॰
		3.	कन्यादान - सन् 1980 ई॰
		4.	हर साल की तरह - सन् 1981 ई॰
		5.	रेत का टीला - सन् 1984 ई॰
		6.	शंखनाद - सन् 2002 ई॰
कहानी संग्रह	:	1.	अपना तो ऐसा ही है - (अप्राप्य)
		2.	पारों खुश है - सन् 1999 ई॰
		3.	हरा समंदर - सन् 2003 ई॰
		4.	कितना गहरा पानी - सन् 2003 ई॰
काव्य संग्रह	:	1.	अनकही सुधियाँ - सन् 1968 ई॰
		2.	सप्तपर्णी मन - सन् 1999 ई॰
		3.	साकुरा के आंगन में - सन् 2001 ई॰
		4.	अभी अभी साकुरा खिला है - सन् 2003 ई॰
संस्मरण	:	1.	हाशिए पर - सन् 1999 ई॰
		2.	दिल्ली : अतीत के झरोखे से - सन् 1999 ई॰
जीवनी	:	1.	सौम्य संत - सन् 1967 ई॰
		2.	कथनी करनी एक समान - सन् 1998 ई॰
आत्मकथा	:	1.	उत्तरोत्तर - सन् 1999 ई॰

यात्रावर्णन : 1. साकुरा के देश में - सन् 1993 ई०

जापानी साहित्य : 1. जापान की श्रेष्ठ कहानियाँ - सन् 1987 ई०

2. जापानी सीखें - सन् 1990 ई०

3. जापानी संगीत - सन् 2003 ई०

4. जापानी - हिंदी शद्बकोश - सन् 1996 ई०

बाल साहित्य : 1. चाँदवाला खरगोश - सन् 1996 ई०

2. परोंवाली राजकुमारी - सन् 1996 ई०

3. मेरी श्रेष्ठ बाल कहानियाँ - सन् 2001 ई०

समीक्षात्मक एवं आलोचनात्मक साहित्य :

1. देव के काव्य में अभिव्यक्ति विधान - सन् 1970 ई०

2. उद्धव शतक पुनर्मूल्यांकन - सन् 1976 ई०

3. मधुमालती पुनर्मूल्यांकन - सन् 1976 ई०

4. घनानंद संवेदना एवं शिल्प - सन् 1978 ई०

संपादित साहित्य : 1. कबीर वाणी - सन् 1998 ई०

(तोक्यो विश्वविद्यालय, जापान के लिए)

2. मीरा वाणी - सन् 1998 ई०

(तोक्यो विश्वविद्यालय, जापान के लिए)

3. स्वामी दयानंद सरस्वती : पत्रों के आइने में - सन् 2003 ई०

इन साहित्यिक कृतियों के अलावा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में राज जी के कई हजार लेख प्रकाशित हो चुके हैं।

1.4 मान - सम्मान एवं पुरस्कार :

प्रतिभासंपन्न साहित्यकार डॉ० राज बुद्धिराजा ने विविध कला कृतियों का सृजन किया हैं। उनको साहित्यिक कार्य के लिए अनेक देश-विदेश के पुरस्कार एवं मान-सम्मान प्राप्त हुए हैं। उनकी सूचि इस प्रकार हैं -

1. राज जी को 1976 ई० में यु० जी० सी० से 'पोस्ट डॉक्टरेल फेलोशिप' प्रदान की गई।
2. राज जी को भारत - जापान सांस्कृतिक एकता के लिए 'महिला शिरोमणि' पुरस्कार सन् 1993 ई० में प्राप्त हुआ।
3. उन्हें सन् 1996 ई० मौलिक काव्य लेखन के लिए 'रत्न शिरोमणि' पुरस्कार से सम्मानित किया गया।
4. उन्हें 'भारतीय प्रतिष्ठा समन्वय' पुरस्कार समग्र लेखन के लिए सन 1995 ई० में प्रदान किया गया है।
5. राज जी के 'दिल्ली अतीत के झरोखे से' संस्मरण के लिए सन् 1996 ई० में 'मीड़िया इंडिया पुरस्कार' से सम्मानित किया गया है।
6. राज जी को 'ऑल इंडिया डेरावल ब्रदरहुड़ अॅवॉर्ड़' द्वारा सन 1996 ई० में उनके भारत-जापान सांस्कृतिक एकता के कार्य के लिए पुरस्कृत किया गया।
7. उनको 'इंटर नेशनल फ्रेंड़शिप अॅवॉर्ड़' द्वारा सन् 1997 ई० में सम्मानित किया गया।
8. राज जी ने सन् 1997 ई० में मौलिक लेखन के लिए 'विजय रत्न अॅवॉर्ड़' प्रदान किया गया।
9. राज जी ने सन् 1997 ई० में 'भारतीय प्रतिष्ठा पुरस्कार' प्राप्त किया।
10. राज जी ने उनके समग्र लेखन के लिए सन् 1998 ई० में 'आऊट स्टँड़िग पर्सनॅलिटी' पुरस्कार प्रदान किया।
11. राज जी को सन् 1999 ई० में भारत-जापान सांस्कृतिक एकता के लिए उन्हें 'समन्वय श्री' पुरस्कार प्रदान किया गया।
12. उन्हें सन् 1999 ई० में 'अवंतिका शिखर सम्मान' द्वारा पुरस्कृत किया गया है।
13. राज जी को उनके जापानी साहित्य और भारत-जापान सांस्कृतिक एकता के कार्य के लिए सन् 2000 ई० में जापानी सर्वोच्च सम्मान 'द ऑर्ड़र ऑफ द सेक्रेड़ ट्रइयर गोल्ड़ रेज विद नैक रिबन' द्वारा सम्मानित किया।
14. राज जी ने सन् 2001 ई० में हाशिए पर (संस्करण) के लिए 'साहित्य कीर्ति सम्मान'

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR.

प्राप्त किया।

15. राज जी को हिंदी साहित्य सेवा के लिए सन् 2001 ई० में 'हिंदी सेवा सम्मान' प्रदान किया गया।

डॉ० राज बुद्धिराजा को देश-विदेश के अनेक मान-सम्मान प्राप्त हुए है। यहाँ तक की जापान के सम्राट द्वारा सन् 2000 ई० में अलंकृत किया गया। किंतु राज जी का भारत सरकार द्वारा समुचित सम्मान न होना बड़ी खेदजनक बात है। राज जी की प्रतिभा को पहचान ने के लिए हमें विदेशी सरकार द्वारा प्राप्त पुरस्कारों तथा सम्मान का सहारा लेना पड़े यह बड़ी दु:ख की बात हैं। राज जी ने अपने साहित्यिक कार्य द्वारा भारत-जापान के बीच जो सांस्कृतिक एकता, समन्वय, विश्वबंधुत्व की भावना को उभारा है, उसपर अनेक देश-विदेश की संस्थाओं ने दृष्टिपात करते हुए समय-समय पर उन्हें मान-सम्मान तथा पुरस्कार प्रदान किए हैं

विविध पुरस्कारों से अलंकृत होने के बावजूद राज जी की प्रतिभा तथा साहित्य अपनी पहचान बनाने में समर्थ है, वह किसी मान-सम्मान या पुरस्कार के मोहताज नहीं हैं।

1.5 डॉ ० राज बुद्धिराजा के औपन्यासिक कृतियों का सामान्य परिचय :

राज जी ने जिन औपन्यासिक कृतियों का सृजन किया हैं, वे सव लघु उपन्यास की कोटी में आते हैं। उनके उपन्यासों की वस्तु पर दृष्टिपात करने पर मालूम हो जाता है कि वे उपन्यास तीन वर्गो में विभाजित करना संभव हैं। वह इस प्रकार है -

1. सामाजिक उपन्यास : 'प्रश्नातीत', 'कावेरी', 'कन्यादान' और 'हर साल की तरह'।
2. सांस्कृतिक उपन्यास : ' रेत का टीला'।
3. धार्मिक उपन्यास : 'शंखनाद'।

इन औपन्यासिक कृतियों का सामान्य परिचय इस प्रकार है -

1.5.1 प्रश्नातीत (1977) :

डॉ० राज बुद्धिराजा कृत 'प्रश्नातीत' उनका प्रथम उपन्यास है, जो सन् 1977 ई० में प्रकाशित हुआ है। इस उपन्यास में पुरूषत्व के अहंकार से ग्रस्त पुरूष और

उसके कारण टूटता परिवार इन दो पाटों के बीच पिसती संघर्षशील नारी की व्यथा की कथा अंकित है। अत: यह एक नायिकाप्रधान उपन्यास है।

नायिका मधु का विवाह आशीष के साथ हो जाता ही। कुछ सालों के पश्चात् उन्हें पुत्रप्राप्ति भी हो जाती है। आशीष का मधु के प्रति कलुषित दृष्टिकोण होता है, वह मधु को आशीष के साथ तन्मय नहीं होने देता था। आशिष मधु -अपनी पत्नी को सताने में सुख मानता है। इस संदर्भ में एक कथन द्रष्टव्य है - "उसे सताने में मुझे बेइन्ताहा सुख मिलता है। मैं बार-बार भूलता रहता कि वह मेरी मधु है जब-जब मैंने उसका कोमल दरवाजा खटखटाने की कोशिश की मेरे भीतर सांकल की आवाज विलीन हो गई।"[42]

आशीष ने तब हद ही कर दी जब वह अपने दोनो बच्चों-सुनि तथा सुमित और पत्नी से अलग रहने लगा। तब मधु स्वयं के पैरों पर खड़ा होना चाहती है। वह रेडियो में नौकरी करते हुए अध्ययन पूरा कर एक विश्वविद्यालय की प्रख्यात अध्यापिका बनती है। जब अंतरंग मित्र रंजन मधु को बच्चों समेत स्वीकारना चाहता है, तब मधु भारतीय समाज की नारी के प्रति जो संकुचित दृष्टि है, उससे विमुख न हो सकी। अंतत: वह रंजन के प्रेम को स्वीकृत न कर सकी। पश्चातापदग्ध आशीष जब वापस लौटना चाहता है, तब उसके सभी रास्तें बंद हो चुके हैं।

पति का एकाधिकार माननेवाले, कलुषित विचारोंवाले, नारी को भोग्या माननेवाले भारतीय पुरूष वर्ग का प्रतिनिधि पात्र है-आशीष। लेखिका ने आशीष के माध्यम से इन प्रवृत्तियों पर निर्मम आघात किए हैं।सुमित और सुनि के दवारा पिता से अलगाव रखनेवाले वच्चों की घुटन का मर्मस्पर्शी चित्रण किया गया है। रंजन एक सामाजिक यंत्रणाओं को सहनेवाला आदर्श पात्र है।मधु संघर्षशील तथा स्वाभिमानी नारी का प्रतिनिधित्व करती है।

इस उपन्यास का प्रतिपाद्य है कि जव परिवार के सदस्यों में आत्मीयता सहनशीलता, सहजता, परस्पर जिजीविषा हो तभी परिवार वनाया जा सकता है, अन्यथा नहीं। इस उपन्यास में जिन प्रश्नों को प्रस्तुत किया गया हैं, वह सहृदय पाठकों को विचार करने पर मजवूर करते हैं। इस उपन्यास के संवाद पात्र-चरित्रांकन में सक्षम हैं। संवादों की

भाषा पात्रानुकूल, प्रवाहमय, सहज स्वाभाविक हैं।

1.5.2 कावेरी (1979) :

डॉ०राज बुद्धिराजा द्वारा लिखित 'कावेरी' इस नायिका प्रधान उपन्यास का प्रकाशन तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली द्वारा सन् 1979 ई० में हुआ। यह उनका दूसरा उपन्यास है, जो नारी की अहवेलना, संघर्ष और यंत्रणाओं को उद्घाटित करता है। इस की कथावस्तु बृहद तीन पत्रों में विभाजित हैं।

'कावेरी' उपन्यास की नायिका स्त्री होने के कारण बचपन से ही उसे अवहेलना सहन करनी पड़ती है। विवाह के पश्चात् जब कावेरी को पुत्र प्राप्ति होती है, तब उसे पुत्र के नामकरण का अधिकार भी नहीं दिया जाता। वह अपने दो बच्चों-अनु-शांतनु के साथ अलग रहते हुए पढ़ाई जारी रखती है और अंतत: वह एक विश्वविद्यालय में प्रोफेसर बनती है। कावेरी के बच्चे भी उसे अकेला छोड़ देते है। कावेरी वृद्ध डॉक्टर के साथ जुड़ जाती है।

'कावेरी' उपन्यास में नारी की मानसिक उलझन, घुटन, छटपटाहट, अकेलापन, विभक्त परिवार की समस्या, भारत विभाजन आदि समस्याओं को लेखिका ने अभिव्यक्ति दी हैं। इस उपन्यास की भाषा-शैली प्रसंगानुकूल, प्रवाहमयी है। इस उपन्यास द्वारा लेखिका ने नारी समस्याओं, अन्य सामाजिक समस्याओं की सफल अभिव्यंजना करते हुए पाठक को सोच-विचार के लिए प्रवृत्त किया है।

1.5.3 कन्यादान (1980) :

डॉ० राज बुद्धिराजा द्वारा पत्रात्मक शैली में लिखा हुआ 'कन्यादान' उपन्यास सन् 1980 ई० में तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास को वैदेही के पुनर्जन्म को समर्पित किया गया है।

'कन्यादान' उपन्यास की नायिका-ऋतु, स्वतंत्र विचारोंवाली स्त्री है। वह एक लड़के से प्रेमविवाह करती है। उसे पति की मारपीट, धमकियाँ आदि यंत्रणाओं को सहना पड़ता हैं। तव उसे थानेदार विनीत इन यंत्रणाओं से छुटकारा दिलाता है। ऋतु अपने दो

बच्चों - अक्षत और रोली के साथ अलग रहती है और अपनी मेहनत से उनको वकील और डॉक्टर बनाती है, जबकि वह स्वंय कर्जदार बन जाती है। ऋतु अक्षत - रोली की पढ़ाई का कर्ज चुकाने के लिए विदेश चली जाती है और विसाबा - जो नौकर है, वह ऋतु की राह देखता है। विसाबा अक्षत और रोली के दुर्व्यवहार को सहता रहता हैं।

इस उपन्यास द्वारा राज जी ने टूटते रिश्तों की कसमसाहट तथा घुटन, प्रेम विवाह, विभक्त परिवार, पारिवारिक मूल्य, आदि समस्याओं का चित्रण किया है। आधुनिक नारी को मार्गदर्शक हो, ऐसा संघर्षशील नायिका ऋतु का चरित्र उभरकर सामने आता है। भारतीय संस्कृति में 'कन्यादान' एक पवित्र कर्म माना जाता है। ऋतु रोली का कन्यादान कर उऋण होना चहती है। इसी कारण 'कन्यादान' उपन्यास शीर्षक के रूप में समर्पक है। राज जी का यह उपन्यास पौराणिक और वर्तमान जीवन का तुलनात्मक अध्ययन करता है, और मानवीय मूल्यों की पहचान कराता है, नया सामाजिक दृष्टिकोण प्रदान करता है।

इस उपन्यास में शहर और ग्राम्य संस्कृति के अंतराल को मार्मिकता से अंभिव्यंजित किया गया हैं। इसलिए राज जी ने ग्राम्य भाषा का भी प्रयोग किया है। इस संदर्भ में यह पंक्तियाँ द्रष्टव्य है - "पिता समान भाई को विसबा कों राम - राम पहुँचे। दीनू काका को भी राम-राम बांचना। अपने खेत के पिछवाडे वाले मंदिर के पुजारीजी को पायलाग कहना। परबतिया ताई को हाथ जोड़कर 'जै राम जी की कहना'। भौजी को भी घने नेह से नमस्ते कहना।"[43] इस तरह 'कन्यादान' उपन्यास की भाषा सहज, स्वाभाविक, प्रवाहमयी, ध्वन्यात्मक हैं। ग्राम्य भाषा के कारण इसमें अधिक विश्वसनीयता आ गई है। निसंदेह डॉ० राज बुद्धिराजा का 'कन्यादान' एक पठनीय उपन्यास है।

1.5.4 हर साल की तरह (1981) :

डॉ० राज बुद्धिराजा का आत्मकथात्मक शैली में सृजित 'हर साल की तरह' इस उपन्यास का सन् 1981 ई० में तक्षशिला प्रकाशन द्वारा प्रकाशन हुआ। यह एक नायिका प्रधान उपन्यास है।

उपन्यास की नयिका-पल्लवी का विवाह आर्मी के एक जवान से की जाती है,

किंतु वह पल्लवी के पेट में अपने अंश में छोड़कर ला पता हो जाता है। पल्लवी के मायकेवाले पल्लवी का दूसरा विवाह करना चाहते है, किंतु पल्लवी दूसरा विवाह न करते हुए मायका तथा ससुराल दोनों से अलग रह कर अपनी पुत्री- शिल्पा का लालन-पालन करते-करते स्वंय भी डॉक्टरेट पूरा करती है। स्वतंत्र विचारोंवाली शिल्पा मॉड़ेलिंग में करिअर बनाना चाहती है। शिल्पा अपने छोटे तिष्य को को माँ के हाथों सौंप विदेश जाती है, तो शिल्पा का पति दूसरा विवाह करता है। अंतत: तिष्य का बचपन माता-पिता के होते हुए भी उनके अभाव में बीतता हैं।

चारू के अच्छे वेतन को देखते हुए देवांशीष उससे विवाह बंधन मे बंध जाता है, लेकिन उनका विवाह एक समझौता मात्र बना है। चारू की व्यथा का अंकन इन शद्वों में हुआ है - "एक ही घर में रह कर रेल की पटरियों की तरह समानांतर चले जा रहे हैं यही हमारी नियति है। हम दोनों ने इस नियति को स्वीकार कर लिया है, बीना किसी टीका टिप्पणी किये।"[44] पल्लवी चारू और देवांशीष के बीच समझोता करना चाहती है।

इस उपन्यास में पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण, टूटते रिश्तें, नारी शोषण, बढ़ती हुई महँगाई, महानगरीय जीवन, भग्न परिवार, माता-पिता के प्रेम से वंचित बच्चे, आदि विभिन्न समस्याओं को यथार्थ के धरातल पर चित्रित किया है। तिष्य और पल्लवी का मनोवैज्ञानिक चित्रण सुंदर बन पड़ा है। स्वाभिमान और संघर्ष के कारण पल्लवी का पारंपारिक भारतीय नारी का रूप कुंदन के समान निखर कर सामने आता है। शिल्पा एक अत्याधुनिक गलत संस्कारों से ग्रस्त नारी का प्रातिनिधिक पात्र है।

शिल्पा तथा चारू के दवारा नारी मुक्ति का अनुचित अर्थ ग्रहण कर स्वयं के परिवार को ध्वस्त करनेवाली नारियों के प्रति करारा व्यंग्य किया गया है। उपन्यास दवारा लेखिका ने संदेश दिया है कि नारी घर-परिवार को वनाती भी है और विगाड़ती भी है। पल्लवी के दवारा लेखिका ने जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति यथार्थ के धरातल पर की है।

डॉ० राज वुदधिराजा का 'हर साल की तरह' उपन्यास निसंदेह एक अनन्य साधारण उपलब्धि है।

1.5.5 रेत का टीला (1984) :

राज बुद्धिराजा का रचना क्रम की दृष्टि से पाँचवा उपन्यास है 'रेत का टीला', जो सन् 1984 ई० में तक्षशिला प्रकाशन द्वारा प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास पत्रात्मक शैली में लिखा हुआ, जापान की रूढ़ियों, रहन-सहन, संस्कार, त्योहार से प्रभावित है।

जापान की नोबुको भारत की नेहा को खत लिखती है। इन दोनों के पत्रों द्वारा जापान ओर भारत के बीच के खान-पान, संस्कृति, संस्कार, शिक्षा व्यवस्था, त्योहार आदि के तुलना द्वारा दो देशों की सांस्कृतिक एकता का लेखिका ने प्रयास किया हैं। भारतीय नारी के शोषण के संदर्भ में लेखिका लिखती है कि - "क्या भाग्य लेकर उतारा गया है इस नारी को, कुछ भी हो गाली तुम्हें खानी ही होगी। उसी से पेट भर लेना, दर्द हो उफ तक न करना। यह सब तो उसे जन्म घूट्टी पिलायी जाती है न ।"[45] यह स्थिति केवल भारतीय नारी की नहीं है, बल्कि हर देश की नारी का शोषण किसी न किसी रूप में चलता है, इस वैश्विक सत्य का लेखिका ने उद्घाटन किया है - "कोई भी देश या समाज अपने आप को कितना ही आधुनिक क्यों न समझे, लेकिन नारी-पुरूष के संबंधों को लेकर वह अनुदार ही होता है। दूसरे शद्वों में यह कहा जा सकता है कि नारी के प्रति वह क्रुर ही होता है।"[46]

लेखिका ने इस उपन्यास द्वारा देश विभाजन की त्रासदी, भारतीय नारी, भारतीय लोगों का अभावग्रस्त जीवन, देश की राजनीति तथा अर्थनीति महानगरीय अमानवीयता, प्रशासनीय दुरावस्था आदि पर दृष्टिपात किया हैं। हरभजन सिंह के मतानुसार - "डॉ० राज बुद्धिराजा की कृति 'रेत का टीला' पत्रों का एक पुलिंदा है। छोटी-छोटी कहानियों को पिरोकर भारत व जापान की संस्कृति के बारे में ऐसे तथ्य प्रस्तुत किये गये हैं, जो शायद किसी इतिहास की पुस्तक में भी न मिलें।"[47]

इस उपन्यास में अत्यंत सूक्ष्मता के साथ देश-काल-वातावरण वर्णित है। देशी-विदेशी शब्दों का प्रयोग तारतम्य के साथ हुआ हैं। भाव पक्ष और कला पक्ष दोनों उत्कृष्ट हैं। 'रेत का टीला' उपन्यास का प्रतिपाद्य विषय है कि - भारतीय शिक्षा व्यवस्था, समाजव्यवस्था, अर्थव्यवस्था पर करारा व्यंग्य करते हुए जापानी भाषा, पारिवारिक संबंध,

रहन-सहन, संस्कृति आदि से परिचित कराते हुए भारत-जापान सांस्कृतिक एकता का प्रयास करना।

1.5.6 शंखनाद (2000) :

डॉ॰राज बुद्धिराजा कृत रचनामृत 'शंखनाद' इस धार्मिक उपन्यास का प्रकाशन सन् **2000** ई॰ में परमेश्वरी प्रकाशन, दिल्ली द्वारा हुआ है। यह उपन्यास स्वामी दयानंद सरस्वती जी के जीवन चरित पर आधारित है।

इस उपन्यास में स्वामी दयानंद सरस्वती जी के जीवन की घटनाओं को मणियों की भाँति क्रमबद्ध रूप में रोचकता के साथ अंकित किया गया हैं। स्वामी जी के साहित्यकार, इतिहासकार, राजनीतिज्ञ, समाज सुधारक आदि रूपों से परिचित होकर नवयुवक प्रेरित होता हैं। स्वामी जी के राष्ट्रप्रेमी, संघर्षमयी, आर्यभाषी व्यक्तित्व के प्रति पाठक सोच विचार के लिए प्रवृत्त होता है।

स्वामीजी के जीवन से संबंधित घटनाएँ जैसे कि - बालक मूलशंकर का ईश्वर भक्ति के प्रति उन्मुख होना, सच्चे महादेव को जानने के लिए दर-दर भटकना, मृत्यु के बारे में सोचना, योग का गहरा अध्ययन करना आदि इस उपन्यास में अंकित हैं। अंत में स्वामीजी पर किया विष प्रयोग पाठक-मन में सामाजिक ठेकेदारों के प्रति आक्रोश पैदा करता है। स्वामीजी अंत तक प्राचीन रूढ़ियों, प्रथाओं, आड़ंबरो, अंधविश्वासों के विरूद्ध शंखनाद करते हैं। इसी लिए इस उपन्यास का शीर्षक 'शंखनाद' भी समर्पक है।

इस उपन्यास के उद्देश्य के संदर्भ में डॉ॰ राज बुद्धिराजा का 'शंखनाद' की भूमिका का यह कथन द्रष्टव्य है - "इस जीवनी को लिखने का उद्देश्य यही रहा कि हम सत्य को सत्य और असत्य को असत्य कहने का साहस जुटा सके। यही मेरा प्रयास किसी एक मन को भी उद्वेलित कर सका तो मैं अपना प्रयास सफल मानूंगी।"[48] इस उपन्यास का प्रतिपाद्य मनोरंजन ही नहीं है, बल्कि स्वामीजी के संघर्षमयी, पांडित्यपूर्ण, साहसी, प्रेरणादायी चरित्र और सामाजिक तथा धार्मिक क्रांति का परिचय देते हुए नवयुवकों को प्रेरणा देना रहा हैं।

इस उपन्यास में विवरणात्मक, पत्रात्मक, संवादात्मक आदि शैलियों का प्रयोग

किया गया है। सहज, स्वाभाविक, प्रवाहमयी, रोचक भाषा के कारण 'शंखनाद' उपन्यास निश्चित रूप से संस्मरणीय है।

1.6 डॉ॰ राज बुद्धिराजा के समकालीन महिला उपन्यासकार :

डॉ॰राज बुद्धिराजा का प्रथम उपन्यास 'प्रश्नातीत' 1977 ई॰ में प्रकाशित हुआ। वह अब तक लेखन कार्य में जुड़ी है। अत: 1977 ई ॰ से सद्यनातन जिन महिलाओं ने उपन्यास विधा में लेखन कार्य किया हैं, वह डॉ॰ राज बुद्धिराजा के समकालीन महिला उपन्यासकार हैं। अत: निम्नलिखित डॉ॰राज बुद्धिराजा के समकालीन महिला उपन्यासकार हैं।

1.6.1 मन्नू भंडारी (1931) :

नई कहानी को प्रतिष्ठित करने में अपना योगदान देनेवाली मन्नू भंडारी ने उपन्यास विधा को भी संपन्न बनाने में अपना अनमोल योगदान प्रदान किया। उन्होंने तीन उपन्यासों का सृजन किया-'आपका बंटी' (1971), 'एक इंच मुस्कान' (1973), 'महाभोज' (1979)।

'आपका बंटी' में एक बच्चे की मन:स्थिति का अत्यंत विस्तृत फलक पर चित्रांकन करने के साथ-साथ उस बच्चे - बंटी की समस्या के माध्यम से तलाकशुदा पति-पत्नी के संबंधो को अनुभूति की गहरी संवेदना के साथ उद्घाटित करने का सफल प्रयास किया गया है। उपन्यास के पात्र संघर्ष की क्षमता, आत्मस्वीकृति का साहस, समय-सत्य से साक्षात्कार करने की शक्ति रखते हैं। बंटी की पीड़ा पाठकों पर मर्मस्पर्शी प्रभाव डालकर करूणा जागृत करती है। यह उपन्यास तलाकशुदा दांपत्य के बच्चों की ज्वलंत समस्याओं के विषय में सोचने के लिए प्रेरित करता हैं, साथ ही जीवन में व्याप्त रिक्तता, उदासी तथा परिस्थितिजन्य विवशता के कारण व्यक्ति की भीतर-ही-भीतर टूटते जाने की नियति को चित्रित करता हैं। सहज-संप्रेषणीय भाषा, सहज-सपाट शिल्प, अधिकांशत: एकालाप शैली के द्वारा कथानक का विकास यह इस उपन्यास की विशेषताएँ हैं।

'एक इंच मुस्कान' इस उपन्यास का लेखन मन्नू भंडारी ने अपने पति राजेंद्र

यादव के साथ मिलकर किया। इस मनोवैज्ञानिक उपन्यास के नायक अमर के मानसिक अंतर्द्वंद्व को चित्रित किया है। इस में पात्रों की परिस्थितियों, मन:स्थितियों, क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं के द्वारा कथावस्तु का ताना-बाना बुना गया हैं। नायक अमर बुद्धिजीवी वर्ग के खंड़ित व्यक्तित्व का प्रतीक के रूप में उभरकर सामने आता है। अमर के मनोविज्ञान का राजेंद्र यादव ने उद्घाटन किया और मन्नू भंड़ारी ने रंजना तथा अमला के अंतर्जगत एवं बहिर्जगत की क्रियाओं - प्रतिक्रियाओं का। दोनों के सम्मिलित प्रयास से नूतन प्रयोग करते हुए मनोवैज्ञानिक कथा-कृति की सृष्टि करना ही लेखक दंपति का इस उपन्यास लेखन का उद्देश्य रहा हैं। मन्नू भंडारी ने पात्रों के साथ एकाकार होकर उनका जीवन अंकित किया है। इस के बारे में राजेंद्र यादव का कथन द्रष्टव्य है - "मेरे और मन्नू के लेखन में यही मौलिक अंतर भी है। वह कथा के पात्रों के साथ इतनी अधिक एकाकार हो जाती है कि उनका 'दुर्भाग्य' उसे अपना 'दुर्भाग्य' लगता है।"[49] भाषा-शैली प्रौढ़ एवं गंभीर, भावानुरूप सक्षम एवं प्रभावपूर्ण है, साथ ही सरस, रोचक हैं।

'महाभोज' उपन्यास का सृजन कर मन्नू भंडारी ने राष्ट्र के ज्वलंत प्रश्नों के प्रति जागृत होने का प्रमाण दिया हैं । इस उपन्यास में गाँव की नारकीय स्थितियों का व्यापक धरातल पर चित्रण किया हैं। समकालीन राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में 'आदमी' की नियति, वर्तमान राजनीति के दूषित प्रभाव, आदि का चित्रांकन किया गया हैं। मानवीय त्रासदी, करूणा और पीड़ा को अंकित किया गया हैं। विचारशील व्यक्ति की पीड़ा मन्नू भंडारी ने इन शद्वों में शद्धबद्ध की है - "आज तो परिवर्तन का नाम लेनेवाले की आवाज घोंट दी जाती है - उसे काटकर फेंक दिया जाता है।"[50]

शरत्चंद्र की कहानी 'स्वामी' का मन्नू भंडारी ने 'स्वामी' नाम से उपन्यास का पुनर्लेखन किया है। लेकिन फिर भी उसमें पर्याप्त परिवर्तन किया गया है। शरत्चंद्र की कहानी आत्माधिक्कार और पाप-बोध की कहानी थी, जिसे मन्नू भंडारी ने सहज मानवीय अंतर्द्वंद्व की कहानी के रूप में ढाला है।

मन्नू भंडारी ने अपनी कृतियों मे वृहद सामाजिक आयाम को अपनाया है। इसीलिए हिंदी की महिला कथाकार पर स्त्री-पुरूष संबंधों तक सीमित रहने का और रचनाओं में बासीपन आने का आरोप जब आलोचक लगाते हैं, तो उन आलोचकों को मन्नू भंडारी को इस आक्षेप से स्पष्टत: बाहर रखना पड़ता है। मन्नू भंडारी के 'आपका बंटी' में अंतर्जगत् की सूक्ष्म भावनाओं को उद्घाटित करते हुए तलाकशुदा दंपति के बच्चे की समस्या अंकित है, 'एक इंच मुस्कान' में मानसिक अंतर्द्वंद्व मनोवैज्ञानिक धरातल पर चित्रित किया है, तो 'महाभोज' में समकालीन राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में आम आदमी की नियति का उद्घाटन किया है। गहरी संवेदनशीलता, अनुभूति की सच्चाई तथा अपने मौलिक कलात्मक अंदाज से प्रस्तुतिकरण इन्हीं विशेषताओं के कारण मन्नू भंडारी हिंदी की महिला उपन्यासकारों में एक श्रेष्ठ उपन्यासकार हैं।

1.6.2 मेहरून्निसा परवेज (1944) :

मेहरून्निसा परवेज का मुस्लिम मध्यवर्गीय चेतना को लेकर हिंदी साहित्य में आगमन हुआ। बड़ी सरलता और ईनामदारी के साथ जीवन की अनेक समस्याओं का यथार्थ वादी चित्रण करते हुए उनका समाधान मानवीय दृष्टिकोण से करने का प्रयास किया हैं। उन्होंने रागात्मकता और भावुकता को अपने लेखन का अपरिहार्य तत्त्व के रूप में ग्रहण किया। मेहरून्निसा परवेज ने 'उसका घर' (1962), 'आँखों की दहलीज' 1969), 'कोरजा'(1977), 'अकेला पलाश' (1981) आदि ख्यातनाम उपन्यासों का प्रणयन किया।

'उसका घर' उपन्यास एक मध्यवर्गीय ईसाई परिवार की आंतरिक टूटन पर आधारित उपन्यास है। परंपरागत समाजिक मूल्यों से टकराने के बजाए उनके पात्र अपना अलग रास्ता बनाकर आगे बढ़ने में धन्यता मानते हैं। पति-पत्नी के टूटे रिश्ते को जबदस्ती घसीटने की अपेक्षा लेखिका तलाक को उचित मानती है। उपन्यास में लेखिकाने अंतर्जातीय-विवाह का समर्थन भावात्मक स्तर पर किया है।

'आँखों की दहलीज' उपन्यास के द्वारा परवेज ने नारी जीवन की सार्थकता उसके स्त्रीत्व, मातृत्व में है, इस मान्यता को पाठको के सामने रखा। लेखिका के

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR.

विवाह के तीन-चार वर्षों के बाद भी वह मातृत्व पद को न पा सकी। उसके कारण उन्हें प्रताड़ना को झेलना पड़ा। इसी कारणवश लेखिका ने अपने उपन्यासों में मातृत्व को ही नारी जीवन की सार्थकता माना और भोगे हुए यथार्थ को अभिव्यक्ति प्रदान की।

'कोरजा' उपन्यास में मुस्लिम संस्कृति और जीवन का व्यापक धरातल पर चित्रांकन किया है। इस उपन्यास में दिए नामों को हटा दे तो इस कहानी को हम देश के किसी भी भाग के निम्न-मध्यवर्गीय विपन्न मुस्लिम वर्ग की कहानी कह सकते हैं। इस उपन्यास में पति-पत्नी के मध्य का तणाव, मुस्लिम समाज की जड़ रूढ़िया, नारी जीवन की त्रासदी, रात-दिन की अशांति को अभिव्यंजित किया गया हैं। शिक्षा, शासन, आदमी की संकीर्ण मानसिकता पर चुभते व्यंग्य भी कसे गए हैं। जिंदगी के विविध रंग, रूप और समस्याओं को इस उपन्यास में चित्रांकित किया गया है।

'अकेला पलाश' उपन्यास दांपत्य जीवन में आए ठंडेपन की समस्या को लेकर लिखा है। पात्रों के माध्यम से लेखिका ने विभिन्न सरकारी विभागों के भ्रष्टाचार, अंतर्जातीय विवाह और नारी जीवन की विविध स्थितियों को शद्धांकित किया हैं। वह जाति व्यवस्था को व्यर्थ मानते हुए उससे मुक्त होने की बात इन शद्धों में करती हैं - "जात-पात तो केवल एक जीने मरने का माध्यम है, इससे अधिक कुछ नहीं। फिर पढ़-लिख कर भी हम उन्हीं लकीरों को पीटें तो हम किन बातों पर कह सकेंगे कि हम तरक्की कर रहे हैं।"[51] मेहरून्निसा परवेज के 'पत्थरवाली गली' इस उपन्यास में नारी के प्रति पुरूष का भोगवादी दृष्टिकोण व्यंजित हैं।

मेहरून्निसा परवेज मानव-मूल्यों और मानव-धर्म की समर्थक होने के कारण उन्होंने मानव जीवन से संबंधित नारी के बांझ, प्रेमी-प्रेमिका के विवाह, नपुंसक पुरूष, कुँवारी माँ, मुस्लिम समाज में व्याप्त अनाचार, दिन-ब-दिन टूटतें जीवन-मूल्य, आर्थिक विपन्नता आदि समस्याओं का सजीव चित्रण किया। उन्हें पीड़ित नारी के प्रति गहरी सहानुभूति है। गहरी अनुभूति और मूल संवेदना की प्रभावशाली अभिव्यंजना के कारण मेहरून्निसा परवेज एक सफल महिला उपन्यासकार है।

1.6.3 मृदुला गर्ग (1938) :

स्वातंत्र्योत्तर युग की 'बोल्ड' लेखिकाओं में मृदुला गर्ग का नाम गिना जाता हैं। सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, व्यक्तिगत, नैतिक और आर्थिक समस्याओं का सटीक और यथार्थ चित्र मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यासों में किया हैं। उन्होंने मध्यवर्ग की घुटन, छटपटाहट, पीड़ा, निराशा, कुंठा, हताशा आदि को अपने मर्मस्पर्शी ढंग से अभिव्यंजित किया हैं। मृदुला गर्ग जी अपनी साहित्य-सृजन प्रक्रिया पर प्रकाश, डालती हैं कि - "जीवन में जो कुछ घटता है, जो गहरे छूता है, व्यथित करता है, जो नाकाबिले बरदाश्त होता है - सभी तो मन के उन गुप्त कोनों में छिपा लेती हूँ, जहाँ मेरे परिचित, दोस्त, सगे-संबंधी झाँककर नहीं देख सकें। सब कुछ बिलकुल अकेले झेलती चली जाती हूँ। फोड़ों की तरह ये अनुभव दुखते-टीसते हैं, धीरे-धीरे पकते हैं और आखिर एक दिन फूट ही जाते हैं - कहानी, उपन्यास के रूप में।"[52] अत: मृदुला गर्ग जी के 'नाकाबिले बरदास्त' अनुभूति की अभिव्यक्ति कहानी तथा उपन्यास के रूप में पाठकों के सामने आती हैं। उन्होंने 'वंशज'(1971), 'चितकोबरा' (1974), 'उसके हिस्से की धूप' (1975) 'अनित्य' (1980), 'मैं और मैं' (1984) आदि उपन्यासों की सृष्टि की।

'वशंज' इस उपन्यास में लेखिका ने दो पीढ़ियों के वैषम्य और संघर्ष को चित्रित किया हैं। शुक्ला साहब पाश्चात्य रीति-नीति में रंगे है और अपने पुत्र को अपने साँचे में ढालना चाहते है। किंतु पुत्र सुधीर सहमत नहीं हैं। उपन्यास के आत्मस्वाभिमानी पात्र भ्रष्टाचार, रिश्वत, बेइमानी से तिलमिला उठते हैं। लेखिका का कथन द्रष्टव्य है - "यही तो फर्क है, अंग्रेजी और हिंदुस्तानी अफसर में, अंग्रेज मार जरूर बैठता है, पर माफी माँग लेने पर खुश होकर इनाम देता है, रूपया देता है, लेता नहीं।"[53] अत: उपन्यास के द्वारा लेखिका ने स्वतंत्र भारत की व्यवस्था पर व्यंग कसे हैं।

'चितकोबरा' में मृदुला गर्ग ने सेक्स का उन्मुक्त चित्रण उपन्यास में किया है, जो आलोचकों की प्रशंसा और निंदा दोनों का पात्र है। यह उपन्यास सेक्स आवेग का अनावश्यक विस्तार मात्र है।

'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास मानकर चलता है कि स्वतंत्रता सबको मिलनी चाहिए स्त्री-पुरूष दोनों को। इस उपन्यास में लेखिका ने आधुनिकता के नए मानदंड़ स्थापित किए हैं।

'अनित्य' उपन्यास दो खंड़ो में विभक्त है- सुविधा एवं प्रतिबोध। इस उपन्यास में कैनवास पर राजनीतिक विसंगतियों का सशक्त रेखांकन किया गया है। इसमें राष्ट्र के उत्थान-पतन की कहानी के दवारा अनेक समकालीन राष्ट्रीय प्रश्न उभरकर सामने आते हैं। इस उपन्यास की मुख्य कथा के भीतर एक प्रतीकार्थ है। अनित्य क्रांति की शाश्वत चेतना का प्रतीक है। अविनाश दिग्भ्रमित गांधीवाद है, जिसकी पत्नी श्यामा गांधीवादी राजनीति है। श्यामा असाध्य रोगिणी होने के कारण उसका बच्चा स्वराज्य अर्थहीन है।

'मैं और मैं' उपन्यास अहं और अहं के तकराहट की तीक्ष्ण धारवाली संवेदना की कहानी है, जिसने उपन्यास के कथ्य को रूपाकार देने के साथ पाठक को आदि से अंत तक बाँधे रखा है। यह उपन्यास उस तबके का चित्राकंन करता है, जो दूसरे आदमी को बेवकूफ बनाकर अपनी स्वार्थसिद्धि करता है। कौशल वह वर्ग प्रतीक है, जो किसी भी सहृदय मनुष्य की मानवीय भावनाओं का गलत इस्तेमाल करने में झिझकता नहीं हैं।

मृदुला गर्ग प्रेम में देह और मन के संतुलित सामंजस्य को अनिवार्य मानती हैं। वह व्यक्तिगत मूल्यों को स्वीकृत करने के साथ ही शारीरिक आवश्यकताओं की परिपूर्ति का भी समर्थन करती हैं। विस्तृत चिंतन, आत्मानुभूति की अभिव्यंजना, विशिष्ट भाषा-शैली का प्रयोग, मर्मस्पर्शी ढंग से प्रस्तुति तथा लीक से हटकर लेखन इन विशेषताओं के कारण मृदुला गर्ग ने हिंदी साहित्य में अपना एक पृथक सशक्त स्थान वना लिया हैं।

1.6.4 मंजुल भगत :

मंजुल भगत का नाम वर्तनाम युग की युवा लेखिकाओं में गिना जाता हैं। अपनी सम-सामायिक समस्याओं को मानवीय-संवेदना का पुट देते हुए यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत करने का कौशल मंजुला भगत को प्राप्त हैं। उनकी औपन्यासिक कृतियों की उपलब्धि इसका प्रमाण हैं। उनके उपन्यासों में 'अनारों' (1938), 'बेगाने घर में' (1978), टूटता हुआ

इंद्रधनुष' (1979), 'खातुल' (1982), आदि ख्यातनाम हैं।

'अनारो' इस ख्यातिप्राप्त उपन्यास में निम्न-मध्यवर्गीय संघर्षशील नारी की व्यथा की कथा को मुखर वाणी प्रदान की है। अनारो उस नारी वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है, जो आर्थिक अभावों, सामाजिक रूढ़ियों और पुरूष के अत्याचर तले पिसने के बावजूद अपनी जिजीविषा को नहीं भूलती हैं। अनारो कर्मण्यवादी है, वह कर्म करने पर विश्वास रखती है, भाग्य पर नहीं। इस प्रसंग में एक कथन द्रष्टव्य है - "काम ही ने तन ढका, काम ने ही पेट भरा। काम ही सुहाग, काम ही स्वामी।"[54]

"टूटता हुआ इंद्रधनुष' उपन्यास प्रेम को अभिव्यंजित करनेवाला रूमानी उपन्यास है। इस उपन्यास में पति-पत्नी के टूटते संबंधों को शद्धबद्ध किया है। प्रभात अपनी पत्नी के अवैध संबेधों को जानते हुए भी निर्विकार भाव से कहता है - "जीवन में कोई भी इतना महत्वपूर्ण नहीं कि उसके न होने से संपूर्ण जीवन ही नष्ट हो जाये, जो बीत गया उसका शव लेकर बैठे रहना समझदारी नहीं हैं।"[55]

नंजुल भगत के पात्र स्थितियों से घबरानेवाले अथवा पलायनवादी न होकर वे संघर्षशील, कर्मण्यवादी हैं। लेखिका ने परंपरागत मूल्यों का अस्वीकार कर मानव-मूल्यों को महत्ता प्रदान की हैं।

1.6.5 शशिप्रभा शास्त्री (1923) :

शशिप्रभा शास्त्री हिंदी की महिला उपन्यासकारों में अपना एक पृथक स्थान बनाए है। सन् 1956 ई० से शशिप्रभा जी निरंतर लेखन कार्य में मग्न रही है। उनकी उपन्यास रचनाएँ इस प्रकार हैं - 'वीरान रास्ते और झरना' (1968), 'नावें' (1974), 'सीढ़ियाँ'(1976), 'क्योंकि' (1980), 'कर्क रेखा', 'परछाइयों के पीछे', 'परसों के बाद', 'उम्र एक गलियारे की', 'ये छोटे महायुद्ध'।

'वीरान रास्ते और झरना' इस उपन्यास में लेखिकाने वीरान रास्तों पर भटकनेवाली एक नारी की मानसिक कुंठाओं को वाणी प्रदान की हैं, जो अंततः अपने ही पुराने प्रेमी की सहायता से कुंठाग्रस्त मानसिकता से मुक्ति प्राप्त करती हैं। इसके प्राप्त भूत

और भविष्य में जीने की अपेक्षा वर्तमान में जिते हैं, वह भी स्वच्छंद जीवन। इस संदर्भ में लेखिका ने लिखा है - "जिंदगी जीने के लिए है, घुट-घुट कर मरने के लिए नहीं।"[56]

'नावें' इस उपन्यास में लेखिका ने नारी के अंतर्मन की पीडा, अवैध संबंधों से उत्पन्न जटिलता और आज के परिवर्तित सोच का यथार्थ चित्रण किया हैं।

'सीढ़ियाँ' उपन्यास में नारी की प्रेम-भावना और पीड़ा-बोध के प्रति तथा नारी-मन की अछोर भावुकता के प्रति उपन्यासकार का बदलता हुआ दृष्टिकोण दृष्टिगोचर होता हैं। नारी विषयक नव्यतर भाव बोध इस उपन्यास में मिलता है। बदलते हुए जीवन-संदर्भो में तर्क और भावना के मध्य पिसती नारी की नियति को रेखांकित किया हैं। 'सीढ़ियाँ' वह मनोविज्ञान पर आधृत सशक्त कला-कृति है, जो लेखिका के चिंतन से उपजे खास अंदाज और कथ्य की लीक से हटी हुई मुद्रा के कारण अनूठी बनी हैं।

'क्योंकि' उपन्यास मध्यवर्गीय परिवार की आभूषण-प्रियता और उसके कारणवश उन्हें उठाने पड़ी आर्थिकहानि का चित्रांकन किया हैं। लेखिका ने दहेज प्रथा का पुरजोर विरोध किया है। लेखिका लिखती हैं कि - "इस देश के तमाम युवक नपुंसक हो गए हैं। इनकी शादियों की बात चलती हैं और ये आटे के बठुए बने बैठे रहते हैं। इन्हें शर्म नहीं आती, इनके माँ-बाप इनके सौदे करते रहते हैं, और ये भेड़ बकरियों की तरह ही इन सबकी गर्दन उड़ा दूं।"[57] इस प्रकार लेखिका ने दहेज प्रथा के प्रति आक्रोश व्यक्त किया है।

'ककरेखा' इस उपन्यास में शशिप्रभा शास्त्री ने स्त्री-पुरूष संबंधों की वास्तविकता को अंकित किया हैं। नारी के एकाकीपन की पीड़ा का सुंदर चित्रण बन पड़ा है। 'परछाइयों के पीछे' उपन्यास पढ़ी-लिखी, सुंदर और कमाऊ नारी को पुरूष के पाशविक अत्याचारों को किस तरह झेलना पड़ता हैं, इस का आद्यंत मार्मिक चित्रण करता हैं। मानो यह उपन्यास नारी-मन की पीड़ा का दस्तावेज है। 'परसों के बाद' उपन्यास में मनोवैज्ञानिक भावभूमि पर आधृत बाल-मन और वयस्क-मन की सुंदर झाँकियाँ प्रस्तुत की हैं। भारत देश में अपनी प्रतिभा और योग्यता का समुचित समादर न मिलने के कारण विदेश जाकर बसनेवाले वैज्ञानिक शंकर का चित्रण कर लेखिका ने प्रतिभा पलायन की समस्या को पाठकों के सामने

प्रस्तुत किया हैं।

शशिप्रभा शास्त्री के उपन्यासों में घर-परिवार और मानव-मन की बारीकियों के सुंदर चित्र दृष्टिगोचर होते हैं। नि:संदेह मानव-मन की हर धडकन और सिहरन शशिप्रभा शास्त्री के उपन्यासों में स्पंदित-कंपित होती है। इन्हीं विशेषताओं के कारण शशिप्रभा शास्त्री का अपना महत्व हैं।

1.6.6 शिवानी (1923) :

सुश्री शिवानी स्वातंत्र्योत्तर काल की शीर्षस्थानीय लेखिका है। शिवानी जी मूलत: रोमांस, स्त्री-पुरूष संबंधों को चित्रित करनेवाली कथाकार के रूप में सम्मुख आती हैं। उनकी औपन्यासिक कृतियों की संख्या काफी बड़ी हैं - 'चौदह फेरे' (1960), 'मायापुरी' (1961), 'कृष्णकली' (1969), विषकन्या (1970), 'सुरंगमा'(1979), 'श्मशान चंपा' (1972), 'भैरवी' (1969), 'किशनुली' (1979), 'माणिक' (1977), 'गैंड़ा' (1978), 'रथ्या' (1977), 'चल खुसरो घर अपने' (1982), 'कालिंदी' (1990), आदि।

'चौदह फेरे' उपन्यास में परंपरागत नैतिकता को त्याग विवाह की रूढ प्रथा, प्राचीन और आधुनिक विचारों का संघर्ष, अंतर्जातीय विवाह, समय पर विवाह न होने से उत्पन्न स्थिति को चित्रित करते हुए समकालीन सामाजिक, नैतिक, आर्थिक, धार्मिक, व्यक्तिगत समस्याओं, पारिवारिक जीवन की गुत्थियों को मर्मस्पर्शी ढंग से उठाते हुए उन्हें सुलझाने का प्रयास किया हैं।

'मायापुरी' उपन्यास में पहाड़ी कन्या शोभा के संघर्षपूर्ण जीवन की गाथा शब्दांकित है। इस उपन्यास में लेखिका ने ग्राम्य जीवन के रीति-रिवाज, वातावरण आदि का चित्रांकन करने के कारण यह उपन्यास आँचलिक उपन्यास की विशेषताओं को लिए हुए हैं। वर्तमान भौतिक युग में अर्थ-शक्ति सबसे बड़ी है, किंतु मानसिक शांति अर्थ के द्वारा प्राप्त करना असंभव है, यही लेखिका का प्रतिपाद्य विषय रहा है।

'कृष्णकली' उपन्यास में लेखिका ने कुष्ठरोग और वेश्या जीवन को मानवीय संवेदना के साथ उठाया हैं। कृष्णकली परिस्थितियों से टकराती हुई अपने व्यक्तित्व को

पहचान अंत तक बनाए रखती हैं। वह कहती है- "मेरी चिंता मत करो वासवी, मैं अपनी देखभाल खूब अच्छी तरह कर सकती हूँ। मुझे मोल लेने वाला व्यक्ति शायद अभी तक जन्मा नहीं हैं।"[58]

'विषकन्या' एक नई शैली के कथानक के साथ उपस्थित हुआ है। लेखिका के उपन्यासों की प्रशंसिका लेखिका को भोज पर आमंत्रित करती है। वह प्रशंसिका जिस चीज की तारीफ करती, वह नष्ट हो जाती थी। विषकन्या-सा उसका प्रभाव था, इसी का चित्र यहाँ पर उतारा है। किसी महिला को समाज धर्म और भगवान के नाम पर उसके रास्ते की रूकावट बने और उसे उचित सम्मान न दे तो वह विद्रोह कर उठती है।

'श्मशान चंपा' उस पर्वतीय तरूणी की कहानी है, जो डॉ० मधुकर से प्रेम करने के बावजूद उसकी परिणीता नहीं बन सकीं। लेखिका अंतर्जातीय विवाह का समर्थन कर समाज की जातीय व्यवस्था के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण रखते हुए कहती है - "अपने समाज में यदि सुयोग्य पात्र नहीं जुड़ता, तो दूसरे समाज को अपनाने में भला क्या दोष है।"[59]

'किशनुली' में किशोरवयीन उन्मादिनी किशनुली के जीवन का मार्मिक चित्र अंकित है। 'माणिक' एक छलनामयी सौंदर्यवती के संमोहक प्रेम और भयंकर अपराध की दिल देहलानेवाली कहानी है। 'गैंड़ा' दो अंतरंग सहेलियों की एक अनोखी तथा मार्मिक कथा है। 'रथ्या' निर्धनता तथा अभावों के अभिशाप को झेलती युवती की कथा है, जो जीवन की अपमान भरी दुर्गम पगड़ंडियों पर गिरती पड़ती एक दिन ऐश्वर्य के राजपथ पर आ पहुँचती हैं। 'कैंजा' उपन्यास में उस कर्तव्यनिष्ठ अभिशप्त मातृत्व का उल्लेख किया है जिसे 'कैंजा' (सौतेली माँ) नाम देकर क्षणभर में मटियामेट कर दिया जाता हैं।

शिवानी के उपन्यासों में मनोरंजन का तत्त्व प्रधान हैं। पहाड़ी चित्रकला-सी शैली के कारण सजीव दृश्य चित्रों का विधान उनके उपन्यासों में पाया जाता हैं। शिवानी की रूप विधायिनी कल्पना ने मानवीय देह सौंदर्य और चित्तवृत्तियों को सप्राण बनाया हैं।

1.6.7 कुसुम अंसल :

स्वातंत्र्योत्तर काल की महिला उपन्यासकारों में कुसुम अंसल एक सशक्त

हस्ताक्षर हैं। उन्होंने हिंदी साहित्य को सशक्त उपन्यास रचनाएँ दी हैं - 'उस तक' (1974), 'अपनी-अपनी यात्रा' (1981), 'उसकी पंचवटी' (1985), 'उदास आँखे', 'नींव का पत्थर' आदि।

'अपनी-अपनी यात्रा' उपन्यास का प्रतिपाद्य है कि जीवन एक यात्रा है और हर व्यक्ति अपने ढंग से उस यात्रा को तय करता है ; जो सत् और असत् के द्वंद्व में आगे बढ़ती हैं। प्रेम के स्वार्थमय और वासनापरक रूप का चित्रण इस उपन्यास में किया हैं। इस प्रसंग में मधु का कथन द्रष्टव्य है - "प्रेम सेक्स से आगे कुछ नहीं है। प्रेम का नाम आते ही सब तुम्हारे हाथ टटोलते हैं। जिस्म पर एक भूखी निगाह डालकर तुम्हें चीर डालते हैं।"[60]

'उसकी पंचवटी' उपन्यास में प्रेम और नैतिकता की समस्या को तीखें रूप में उपस्थित किया हैं। इस उपन्यास के संदर्भ में कमलेश सचदेव का कहना है कि - "पंचवटी का प्रतीक अपने आप में काफी साहसिक प्रतीक है। इसमें सामाजिक नैतिकता के स्थान पर व्यक्तिगत नैतिकता की स्थापना की लेखिका की आकांक्षा लक्षित होती है। राम और सीता जैसे सामाजिक रूप से आदर्श दंपति की निवासस्थली पंचवटी को जब वह सामाजिक रूप से नितांत मर्यादाहीन विक्रम और साध्वी जैसे प्रेमी युगुल की अभिसार स्थली का प्रतीक बनाती हैं तो समाज की नैतिकता से व्यक्ति की नैतिकता को अधिक महत्व देती है।"[61] अत: कहने की आवश्यकता न होगी कि लेखिका ने सामाजिक नैतिकता को महत्ता प्रदान की हैं। संवेदनशील विंदु पर सामाजिक और व्यक्तिगत नैतिकता के बदले व्यक्तिगत नैतिकता के द्वंद्व से नए मूल्यों के उद्घाटित होने की संभावना होने पर भी उसकी नौबत लेखिका ने नहीं आने दी हैं। इसी उपन्यास में स्त्री-पुरूष समानता का समर्थन करते हुए लेखिका कहती है - "जब पुरूष दूसरा विवाह कर सकता है, और पत्नी बिना किसी मनमुटाव के उसे और उसके बच्चों को हृदय से स्वीकार करती है, तो पुरूष जाति का भी फर्ज बनता है, उनको उसी प्रकार स्वीकार करें, उनके बच्चों को स्वीकार करें।"[62] अत: अगर पत्नी पति के पहले बच्चों को अपना सकती हैं, तो पति को भी पत्नी के पहले बच्चों के अपनाना चाहिए। लेकिन आमतौर पर ऐसा नहीं होता।

16104

कुसुम अंसल ने मानव-जीवन के विविध पक्षों को देखा परखा तथा सामाजिक रूढ़ियों विड़ंवनाओं पर अपने उपन्यासों में खुलकर प्रहार किए हैं। प्रेम और सेक्स के अंतर को उन्होंने अपनी कृतियों में शद्धांकित किया हैं। उन्होंने आज के समकालीन देश की समस्याओं को मानवीय संवेदनशीलता के साथ चित्रबद्ध कर अपने समाज के प्रति उत्तरदायित्व का पूरा निर्वाह किया हैं।

1.6.8 सुश्री कृष्णा सोबती (1925) :

नए उपन्यासकारों में विख्यात लेखिका कृष्णा सोबती का नाम अग्रगण्य हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में जिस साहस, निर्भीकता और स्पष्टवादिता का परिचय दिया हैं,वह निश्चय ही प्रशंसनीय हैं। कृष्णा सोबती के सृजित उपन्यासों के नाम हैं - 'डार से बिछुड़ी' (1958), 'मित्रो मरजानी' (1967), 'सूरजमुखी अंधेरे में', (1972), 'यारों के यार: तिन पहाड़' (1968), 'जिंदगीनामा' (1979), 'दिलो दानिश' (1993), ग्यारह सपनों का देश, ऐ लड़की (1991), समय सरगम (2000)।

'डार से बिछुड़ी' उपन्यास में लेखिका ने एक भोलीभाली एवं अल्हड़ नवयुवती की जीवन-कथा अंकित की हैं, जिसे स्वयं की माता के पाप के परिणामस्वरूप कष्टों को सहन करना पड़ता है। इसका कथा - वृत्त व्यापक लोक-जीवन, पुराने पंजाब के सीमांत जीवन की पृष्ठभूमि, इतिहास और कल्पना का मार्मिक समन्वय करते हुए कथात्मक दृश्यों को चलचित्र-सी नाटकीयता प्रदान करते हुए प्रस्तुत हुआ हैं। श्री चंद्रगुप्त विद्यालंकार इस उपन्यास के वारे में लिखते है - "संभवत: पंजाव की किसी पुरानी लोकगाथा या किंवदंती के आधार पर इस आँचलिक लघु उपन्यास की रचना की गई है।"[63] कृष्णा सोवती ने इस आँचलिक उपन्यास का सर्जन कर लेखिकाओं दवारा लिखे गए हिंदी कथा-साहित्य में एक क्षतिपूर्ति की हैं।

'मित्रो मरजानी' उपन्यास की मित्रो लेखिका की अपनी नितांत मौलिक सृष्टि है, जो नारी के पारंपारिक स्वरूप और विंवो से पृथक हैं। मित्रो के चित्रण के संवंध में डॉ० घनश्याम 'मधुप' का कथन द्रष्टव्य हैं कि - "कृष्णा सोवती दवारा मित्रो के रूप में एक ऐसी नारी, लेखिका ने हिंदी साहित्य को दी है जो समर्पिता होते हुए भी ग्रहण की आकांक्षा रखती

है। मित्रो वास्तव मे समर्पिता और गृहीत्वा दोनों ही है।"[64] लेखिका ने प्रेम-वात्सल्य, विवाह, ममता, वासना, स्त्री-पुरूष के स्वाभाविक यौवनाकर्षण की मर्मस्पर्शी तथा सशक्त अभिव्यंजना की हैं।

'सूरजमुखी अंधेरे में' इस उपन्यास में बचपन में बलात्कार का शिकार होने के कारण विकसित काम-विकृति के प्रभाव और उससे मुक्ति पाने की कथा अंकित की गई है। एक ठंड़ी नारी के असफल संभोगों का खुला और व्यापक चित्रण के कारण अन्य सभी भाव दब गए हैं। यह लेखिका के आधुनिकता बोध का परिचायक है।

'यारों के यार : तिन पहाड़' इस यथार्थवादी कृति में कार्यालयीन जीवन की सच्चाइयाँ प्रतिबिंबित होने के साथ ही यांत्रिक जिंदगी की उठा-पटक और अंतरंगता को सशक्त रूप में अभिव्यंजित किया हैं। आधुनिक यांत्रिकता बोध और मानवीय करूणामूलक संवेदना भी चित्रित हैं। इसमें व्यक्ति का आत्महंता बन जाना अथवा हिमशिला-सा निष्प्राण होना व्यक्ति की नई और पुरानी पहचान एक-दूसरे के सम्मुख होने पर जीवन की व्यर्थता-बोध की त्रासदी को अभिव्यक्त करता हैं।

'जिंदगीनामा' उपन्यास पर 1980 का 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' एंव 1981 में पंजाब सरकार का 'साहित्य शिरोमणि' पुरस्कार दवारा कृष्णा सोबती को पुरस्कृत किया गया। यह उपन्यास गुरूगोविंद सिंह के प्रसिद्ध फारसी कथन को समर्पित है, जिसका हिंदी अनुवाद है - 'जब दूसरे सभी रास्ते कारगर न हो सकें, तो जुल्म के खिलाफ तलवार उठाना जायज है'। विभाजन पूर्व पंजाब के भौगोलिक एंव सांस्कृतिक परिवेश की जिंदगी की जिवंत झाँकियाँ इस उपन्यास में प्रस्तुत की हैं। संस्कृति की तुलना जीवित वृक्ष से कर उसके स्पंदित जीवन की ओर संकेत करते हुए विभाजन काल में 'जिंदा रूख' को काट दिए जाने की पीड़ा को अभिव्यंजित किया है। कृष्णा सोबती ने अपने जन्म स्थान जिला गुजराल के प्रति आंतरिक लगाव और मातृभूमि-ऋण से प्रेरित होकर इस उपन्यास की सृष्टि की हैं।

कृष्णा सोबती ने नारी को आदर्शवादिता अथवा कृतिमता का मुलम्मा न देकर नारी को नारी की दृष्टि से देखते हुए उसके व्यक्ति रूप केंद्रित उपन्यासों का प्रणयन किया

हैं। नए रचनात्मक आयाम देती एवं माधुर्य, कोमलता, भावावेगपूर्ण भाषा-शैली ; सरला, अद्भुत आकर्षक शिल्प, प्रवाहमान भावावेग, मौलिक सृजन की प्रतिभा, संवादों की नाटकीयता, व्यक्तिगत मूल्यों का समर्थन आदि कृष्णा सोबती के उपन्यास लेखन की विशेषताएँ हैं।

1.2.9 नासिरा शर्मा (1948) :

20 वीं शताब्दी के 9 वें दशक की उदीयमान उपन्यासकार नासिरा शर्मा ने 'सात नदियाँ : एक समंदर' (1984), 'शाल्मली' (1987), 'ठीकरे की मँगनी' (1989), 'जिंदा मुहावरे' (1993) आदि उपन्यासों का सृजन किया हैं।

नासिरा शर्मा जन्म तथा संस्कारों से एक मुसलमान होने के साथ-साथ एक हिंदू की पत्नी भी हैं, यह स्थिति उनके नए धार्मिक दृष्टिकोण को प्रकट करती हैं। 'सात नदियाँ : एक समंदर' उपन्यास में 20 वीं शती के 8 वें दशक के उत्तरार्ध की ईरान की एक जन - क्रांति के चित्रण के माध्यम से मानव के विवेकशीलता को नकारते हुए विस्तृत होता हुआ धार्मिक उन्माद एक मानवीय संकट हैं, यही लेखिका ने प्रतिपादित किया है।

'शाल्मली' में लेखिका ने आधुनिक कामकाजी महिला की समस्याओं को वाणी प्रदान की हैं। आज की नारी योग्यता, प्रतिभा, बौद्धिकता के बलबूते पर नौकरी प्राप्त कर लेती हैं; किंतु घर-बाहर के दोहरे उत्तरदायित्व के निर्वाह में वह अपनी जीवन की निजी स्वभावगत सहजता को शनैः शनैः तिरोहित करती जा रही है। शाल्मली के माध्यम से लेखिका कहती है - "मेरी समझ में सही नारी मुक्ति और स्वतंत्रता समाज के सोच और स्त्री की स्थिति को बदलने में है। बाहर निकलो या घर में रहो, हर स्थान पर पुरूष तुमसे टकराएगा।"[65] अंततः लेखिका तलाक को पलायन घोषित कर सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता को महसूस करती है।

नासिरा शर्मा ने एक शुद्ध-प्रबुद्ध और प्रगतिशील नारी होने के नाते नारी जाति की अपरिवर्तनशील स्थिति की वेदना-पीड़ा को 'ठीकरे की मँगनी' उपन्यास में अभिव्यंजित किया है। भारतीय नारी, चाहें वह फिर किसी भी धर्म, जाति, वंश की क्यों ना

हों, शताब्दियों से शोषण की शिकार बनती रही हैं और उच्च शिक्षित होने के वाद भी उसकी नियति में कोई परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होता हैं।

'जिंदा मुहावरे' उपन्यास में धार्मिक मान्यताएँ एवं धर्म विषय्क संवेदनाओं को प्रस्तुत किया हैं। भारतीय मुसलमानों की घरेलू जिंदगी और पाकिस्तान में रहते भारतीय मुसलमानों के घरेलू जीवन का लेखिका ने व्यापक चित्रांकन किया हैं। भारत वर्ष के विघटनकारी तत्त्वों में धर्म की प्रमुख भूमिका रही हैं, जिसके प्रमाण स्वरूप **1947** ई० के भारत-विभाजन और **1971** ई० के पाकिस्तान-विभाजन को इसके परिप्रेक्ष्य में देखा-परखा जा सकता हैं। मानवीय रिश्तें-नातें धर्म से ऊपर उठे होते हैं और कोई भी धर्म, मानवीय संबंधों, के मानवीय -मूल्यों के हनन की बात नहीं करता, यही लेखिका का इस उपन्यास के सृजन में प्रतिपाद्य विषय रहा हैं।

गोपाल राय के कथनानुसार - "इसमें कोई शक नहीं कि नौवें दशक में नासिरा शर्मा ने एक अच्छे उपन्यासकार के रूप में अपनी पहचान कायम की है, पर आनेवाले वर्षो में उनकी नई रचनाएँ ही यह प्रमाणित करेंगी कि उनके अनुभव, विचार और संवेदना का कोश कितना समृद्ध हैं।"[66] निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि नासिरा शर्मा हिंदी की महिला उपन्यासकारों में अपना अलग महत्व रखती हैं।

1.6.10 प्रभा खेतान :

प्रभा खेतान **20** वीं शती के अंतिम दशक की ख्यातनाम हिंदी की महिला उपन्यासकारों में अग्रगण्य हैं। प्रभा खेतान ने 'आओ पेंपे घर चले' **(1990)** के प्रणयन से हिंदी साहित्य की उपन्यास विधा की कक्षा में अपना चरण रखा। उसके पश्चात् उन्होंने 'तालाबंदी' **(1991)**, 'छिन्नमस्ता' **(1993)**, 'अपने-अपने चेहरे' **(1994)** आदि उपन्यास कृतियों की सृष्टि की।

'तालाबंदी' उपन्यास के द्वारा तिरोहीत होती मानवीय संवेदना के प्रति आस्था और आशा जगाना लेखिका का उद्देश्य रहा हैं। श्याम वावू अपने कारखाने की श्रमिक समस्या को हल करने के लिए मार्क्सवाद का सहारा लेते है। किंतु श्याम वावू के आस-पास

की गतिविधियों और ट्रेड़ युनियनों की गतिविधियों के दवारा उनके दोहरे चरित्र का पता चलता हैं।

संघर्षशील नारी की व्यथा की कथा को 'छिन्न मस्ता' में मुखर वाणी प्रदान की है। इस प्रसंग में 'छिन्नमस्ता' की प्रिया का कथन द्रष्टव्य है - "हाड़-मांस की बनी ये औरते..... अपने-अपने तरीके से जिंदगी जीने की कोशिश में छटपटाती ये औरतें! हजारों सालों से इनके ये आँसू आ रहे हैं।"[67] 'अपने-अपने चेहरे' उपन्यास में नारी पीड़ा अभिव्यंजित है।उपन्यास के नारी पात्र अपनी-अपनी सलीबें ढो रही है, उसी का चित्रण उपन्यास में किया हैं।

विविध क्षेत्रों में कार्यरत नारी शोषण की सच्ची और मार्मिक अभिव्यंजना अपने पात्रों के आत्म-विश्लेषण और आत्म-स्वीकृति के दवारा लेखिका ने की हैं। लेखिका ने उपन्यासों में शिल्प-प्रविधियों का चयन अत्यंत सजगता और सतर्कता के साथ किया हैं। विषम परिस्थितियों के घात-प्रतिघातों को सहने के बावजूद अपने पृथक व्यक्तित्व की पहचान बनाने में कार्यरत रहना प्रभा खेतान के औपन्यासिक पात्रों की विशेषता हैं।

1.6.11 मैत्रेयी पुष्पा (1948) :

अधुनातन महिला उपन्यासकारों में मैत्रेयी पुष्पा का नाम अग्रगण्य हैं। मैत्रेयी पुष्पा जी ने 'बेतवा बहती रही'(1994), 'इदन्नमम्' (1994), 'चाक' (1997), 'स्मृति दंश' (1990), 'माया मृग', 'झूला नट' (1999), 'अल्मा कबूतरी' (2000), 'अगनपाखी'(2001), 'विजन' (2002) आदि औपन्यासिक कृतियों का सृजन किया।

'स्मृति दंश' और 'बेतवा वेहती रही' उपन्यास भावुकता के अतिरेक से ग्रस्त हैं। 'इदन्नमम' में लेखिका के विचारों की परिपक्वता और सामाजिक यथार्थ के आकलन की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती हैं। लेखिका की बुंदेलखंडी जीवन के यथार्थ की पकड़ और गहन मानवीय संवेदना प्रशंसनीय है। 'चाक', 'झूला नट', 'अल्मा कबूतरी' जैसे उपन्यासों में मैत्रेयी पुष्पा ने ग्रामीण परिवेशगत जकड़न और परिवर्तन के मध्य संघर्षशील नारी की कहानी को प्रस्तुत किया हैं।

'विजन' उपन्यास के पहले लिखित उपन्यासों में मैत्रेयी पुष्पा ने गाँव का दामन नहीं छोड़ा। अपितु उन उपन्यासों में बुंदेलखंड़ के ग्रामीण जन जीवन का चित्रण किया। इसीलिए आलोचकों ने मैत्रेयी पुष्पा को 'गवार गाँव की लेखिका' नाम से संबोधित किया हैं। परंतु **2002** में 'विजन' उपन्यास के प्रकाशित होते ही उनकी मान्यताओं की कमर टूट गयी। 'विजन' में अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (एम्स) के नेत्र चिकित्सा विभाग में चल रहे भ्रष्टाचार की कहानी है। इस उपन्यास में महानगरीय परिवेश की अभिव्यक्ति हुई है। स्त्री के शोषण, संघर्ष और साहस की अभिव्यंजना लेखिका ने इस उपन्यास में की हैं। बेईमानी, सामाजिक वैषम्य, वर्चस्ववादी व्यवस्था, सामंती मानसिकता स्वरूप मोतियबिंद को नेत्र-चिकित्सा द्वारा निकालकर समता की 'लेन्स' बिठाकर समाज की दृष्टि को स्वस्थ बनाने का मूलमंत्र लेखिका ने इस उपन्यास के द्वारा दिया हैं। मेड़िकल प्रोफेशन केंद्रित तथा डॉक्टरों के पेशे की नैतिकता और जीवन-मूल्यों को लेकर लिखा गया 'विजन' हिंदी का प्रथम उपन्यास हैं।

समकालीन समाज की ईमानदारी से प्रस्तुति, रेणु-परंपरा की अनुयायी होकर आँचलिकता का चित्रण, चिरंतन स्मरणीय महिला चरित्रों का निर्माण, भाषागत बिंबों और दृश्यों को सजीव कर देनेवाली अद्भुत क्षमता आदि मैत्रेयी पुष्पा की विशेषताएँ हैं।

1.6.12 सूर्यबाला (1944) :

सूर्यबाला **20** वीं शती की उत्तरार्ध की चर्चित महिला उपन्यासकार है। उन्होंने 'मेरे संधिपत्र' (**1977**), 'सुबह के इंतजार तक' (**1977**), 'अग्निपंखी' (**1984**), 'यामिनी कथा' (**1991**), 'दीक्षांत' (**1992**), 'गृहप्रवेश' (**1995**) आदि उपन्यासों का सृजन किया हैं।

'अग्निपंखी' उपन्यास में उस नारी की व्यथा है. जो संपूर्ण जीवन में सुखविहीन रही है। इसी उपन्यास में महानगरीय जीवन की भयावह सच्चाई और कठोर त्रासदी अंकित हैं। 'यामिनी कथा' आधुनिक नारी जीवन की चिरंतन त्रासदी और उसके भीतर से प्रकाश-किरनें बिखेरती उत्कट जिजीविषा की कथा है। पति-पुत्र के बीच टूटती नारी का संवेदनशीलता के साथ अंकन हुआ है। 'यामिनी कथा' में 'मानसी' तथा 'मटियाला तीतर' दो लघु उपन्यासिकाएँ संग्रहित हैं। 'मानसी' में अनाम रिश्तों के अतींद्रिय लोक की कथा

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR.

संवेदनशीलता के साथ चित्रित है, तो 'मटियाला तीतर' में न्याय, सुधार आदि आदर्शों के नारों के बावजूद हम शोषण-व्यवस्था के किस तरह भागीदार है, इसका सूर्यबाला ने चित्रण किया है। 'दीक्षांत' उपन्यास जीवन-मूल्यों को बचाने की आकांशा का धीरे-धीरे विलय होते जाने का चित्र प्रस्तुत करता है।

सूर्यबाला के उपन्यासों में जीवन के कोमल और गंभीर पक्षों का मणिकांचन संयोग देखने को मिलता हैं। बाल-मन, कैशार्य-मन, नारी-मन को सूर्यबाला ने पूरी सक्षमता के साथ चित्रित किया हैं। मानवीय मूल्यों से जुड़ने की प्रेरणा देनेवाला आशावाद ही सूर्यबाला जी के लेखन के मूल में सन्निहित है।

1.6.13 दिनेशनंदिनी डालमिया :

दिनेशनंदिनी डालमिया वह उपन्यासकार है, जिन्होंने उपन्यासों में अपने भोगे हुए यथार्थ को आँसूओं की स्याही और आत्मानुभूति की कलम के द्वारा कागज के पृष्ठों पर अंकित किया हैं। उनकी औपन्यासिक रचनाओं में मुझे माफ करना' (1974), 'यादों की बैसाखियाँ' (1978), 'कंदील का धुँआ' (1980), 'और सूरज डूबं गया' (1981), 'फूल का दर्द' (1986)आदि हैं।

उपर्युक्त प्रारंभिक चारों कृतियों में एक ही कथा है। एक-दूसरे से पृथक होने के उपरांत उनमें आंतरिक अन्विति एक है। उन सभी उपन्यासों में कथा-नायक के रूप में उनके पति का चरित्र चित्रित हैं।दिनेशनंदिनी डालमिया ने अपने संपूर्ण जीवन-क्रम को उपन्यासों में श्रृंखलाबद्ध रूप में लिप्यांकित किया हैं।नायक अर्थात अपने पति विख्यात पूँजीपति सेठ डालमिया के दोनों रूपों-उज्चल और कलुष को निष्पक्ष भाव से चित्रित किया हैं।

दिनेशनंदिनी ने जब सेठ डालमिया से विवाह किया तब लोग उन पर धन के लोभ के कारण विवाह किया है, ऐसा आरोप करते थे। किंतु वस्तुत: सत्य यह था कि पेट में पलते बच्चे को पिता का नाम देने के लिए यह विवाह अनिवार्य था।विवाहोपरांत की अनुभूति को व्यक्त करती हुई वह कहती है - "और कोई चाव उन्हें क्या होता! पत्नियाँ थीं, बच्चे थे।

बड़ी बेटी के बच्चे थे। मैंने भी अपना चाव पसीने की तरह पोछंकर फेंक दिया। याद आया माँ ने कितना मना किया था। मैं जिसे कविता समझकर लिख गई, वह कभी खत्म न होनेवाला महाकाव्य था। मेरे मन की स्त्री को चाह की चाह थी, उसकी तलाश में मैं कहाँ तक आ गई थी।"[68]

इनके उपन्यासों में नारी के अंतर्जगत का मार्मिक उद्‌घाटन होने के साथ-साथ वैचारिक स्तर पर जुझनेवाली नई-पुरानी पीढ़ी के संघर्ष को वाणी प्रदान की हैं। उनके चिंतन का विषय है कि - "वही नर है जो नारायण बनने की कोशिश में मानवीय स्वभाव से हटकर अपने में एक चुनौती और रहस्यात्मकता भर देता है..... और स्त्री वह अपने रिश्तों के आधार पर दुश्मनी की एक विवेकहीन दीवार खड़ी कर घृणा और कुतर्की पूर्वग्रहों से सजीयता पर कलंक लगाती है, समस्याओं-पर-समस्याओं को जन्म देती चली जाती है।"[69]

परजीव-दुखकातर संवेदना उद्‌भूत अप्राप्य मोती की प्राप्ति, स्वानुभूत पीड़ा से प्रसूत अद्‌वितीय मार्मिकता, जीवन में समाज की कटूक्तियों एवं व्यंग्य के तीक्ष्ण बाणों को सहते हुए जीवन के यथार्थ चित्रों की अभिव्यंजना, कवींद्र-रवींद्र ठाकूर के समान अंतर में बैठी विरहिणी के रात्रंदिन आँसुओं से भीगे गान के अनाहतनाद से प्रसूत साहित्य आदि दिनेशनंदिनी डायमिया के उपन्यास साहित्य की विशेषताएँ हैं।

1.6.14 दीप्ति खंडेलवाल (1930) :

नए दौर की महिला उपन्यासकारों में शीर्षस्थानीय नाम हैं - दीप्ति खंडेलवाल। उनकी उपन्यास कृतियाँ हैं - 'प्रिया' (1976), 'वह तीसरा' (1976), 'कोहरे' (1977), 'प्रतिध्वनियाँ' (1978) आदि।

'प्रिया' उपन्यास में नारी की अभिशप्त नियति को लेखिका ने चित्रित किया है। यह उपन्यास नर-नारी के विकृत और विषम संबंधों की कथा हैं। इस संदर्भ में प्रिया का कथन द्रष्टव्य है - "अच्छा दीदी, माना..... शादी कर लूँगी। तुम केवल इतना बता दो, कौन-सा ब्याह करूँ? नाना वाला, माँ वाला, या तुम्हारा वाला "[70]

'कोहरे' में शिक्षित समाज के उन्मुक्त संबंधों को उजागर किया हैं। उपन्यास में चित्रित परिवार के सदस्य टूटन के कोहरे से घिरे मूल्यहीनता के अंधेरे में अभिशप्त जीवन व्यतीत कर रहे हैं, जो उच्चतर मूल्यों के प्रकाश-किरन से दूर है। 'प्रतिध्वनियाँ' उपन्यास में नारी-जीवन की विड़ंबनाओं का सही रंगीन रेखाओं के माध्यम से उद्घाटन किया हैं। आज बदलती परिस्थितियों में पुराने मूल्य टूट कर नए मूल्य स्थापित हो रहे हैं। पुरातनता से जुड़ना समझदारी नहीं है, किंतु नवीनता भी सदैव स्वागतहार्य नहीं होती। इस परिवेश में व्यक्ति टूटकर अपनी पहचान तक खो जाते है। इसी टूटन और बिखराव की गूँजी प्रतिध्वनि ही 'प्रतिध्वनियाँ' में है। इसमें मानवीय संबंधों का विश्लेषण और जीवन के यथार्थ का चित्रण भी है।

दीप्ति खंडेलवाल के कोमल कवि स्वरों ने जीवन-संघर्षों के ताप से झुलसकर निर्मम यथार्थ को ग्रहण किया और उसकी औपन्यासिक कृतियों में अभिव्यंजना की।

1.6.15 निरूपमा सेवती (1943) :

20 वीं शती के 8 वं दशक की आरंभिक लेखिकाओं में निरूपमा सेवती अग्रगण्य हैं। उन्होंने अनेक उपन्यास रचनामृत प्रदान किए हैं -'पतझड़ की आवाजें' (1976), 'मेरा नरक अपना है' (1977), बँटता हुआ आदमी' (1978), 'दहकन के पार' (1982) आदि।

'पतझड की आवाजें' नर-नारी की समकालीन समस्याओं को उठाते हुए, उनके संमाधान न दे पाने की विवशता स्वीकृत करता हैं। इसीलिए वह कथा क्षितिज पर एक नए आयाम की घोषणा करता है। नौकरीपेशा, विवाह की चाह रखनेवाली, जीवन में स्थायित्व चाहनेवाली, अविवाहित नारी की अभिशप्त नियति के कारण अधूरी आकांक्षा और अंतर्मन की त्रासदी को संस्पर्श करते हुए उसकी विवाह के प्रति आसक्ति और विरक्ति को लेखिका ने कुशलता से अभिव्यांजित किया है।

'वँटता हुआ आदमी' प्रेम को एक मानवीय मूल्य न मानकर व्यावसायिक वस्तु मानता है। इसमें लेखिका ने प्रेम और विवाह के त्रिकोणात्मक पहलू को वड़े संवेदनशील और

भावप्रवण ढंग से चित्रांकित किया हैं। 'मेरा नरक अपना है' में सेवती जी ने प्रेम और सेक्स की जटिलताओं को व्यंजित किया हैं। 'दहकन के पार' का प्रतिपाद्य है कि नर-नारी परस्पर पूरक हैं और एक के अभाव में दूसरे की सार्थकता नहीं है। इसमें व्यक्ति की समाज सापेक्षता सिद्ध है। इस संदर्भ में कथन द्रष्टव्य है - "रिलीजन से यानी सोसाइटी से कटकर चलो तो मुश्किलें तो आएँगी ही। वे नियम, जिनकी जंजीरों से तुम खुद को अलग करोगे घुम-फिरकर बदला लेते रहेंगे।"[71]

निरूपमा सेवती के उपन्यासों में विचारों एवं चिंतन की प्रधानता होने के साथ ही उसमें समाज की सम-सामायिक परिस्थितियों से प्रसूत समस्याओं, दर्द की अनुभूतियों एवं विसंगतियों को मुखर वाणी प्रदान की हैं। महानगरीय जीवन जीते अस्तित्व की गवेषणा में संलग्न पात्र तथा शोषणजनित विवशताओं से उबरने की मानसिक प्रक्रिया के प्रयास ; गहरी संवेदनशीलता और मानव-मन की भाव संपृक्ति ; यथार्थ-बोध आदि उनकी औपन्यासिक विशेषताएँ हैं।

1.6.16 चंद्रकांता (1938) :

आधुनिक संस्कृति और पारंपारिक संस्कारों के मध्य का अंतर्द्वंद्व उभारनेवाली तथा बौद्धिक लेखन की रंगभूमि पर सशक्त रूप में प्रस्थापित लेखिका चंद्रकांता ने 'अंतिम साक्ष्य' (1990), 'अर्थांतर' (1990), 'बाकी सब खैरेयत है' (1993), 'ऐलान गली जिंदा है' (1984), 'अपने-अपने कोणार्क' (1993) आदि कृतियों का सृजन किया।

'अंतिम साक्ष्य' उपन्यास में परंपरावादी आचार संहिता के प्रति व्यक्ति मन का विद्रोह और एक स्वस्थ-स्वाभाविक जीवन की जिजीविषा इन शब्दों में अंकित है - "काटना, जुड़ना, जख्मी होना, सभी अनिवार्य है जीने के लिए।"[72] अर्थांतर उपन्यास में नारी जीवन के तमाम नैतिक मूल्यों को नया अर्थ प्रदान करने का दिशा-संकेत लेखिका करती हैं। मानसिक शांति की प्राप्ति के लिए नारी अर्थांतर दूसरी स्थिति माने अपने अस्तित्व को लेकर जीना तथा पुरानी परंपराओं को ढोने की बजाए जीने का अर्थ खोजना स्वीकार करती हैं। 'बाकी सब खैरियत' में सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि पर परिवर्तीत जीवन-शैली का व्यापक चित्रण करते

हुए उसके पुनर्मूल्यांकन और पुनर्निर्धारण की आवश्यकता महसूस की हैं। पुरानी रूढ़ियो, परंपरागत संस्कारों और जड़ अतीत के प्रति नूतन वदलाव का समर्थन करते हुए पाश्चात्य संस्कृति की चकाचौंध पर मुग्ध होकर पारंपारिक आदर्शों को नकारा हैं।

चंद्रकांता के उपन्यासों में भावुकता और बुद्धिकता दोनों हैं, किंतु भावुकता यद्किंचिन् दबी हुई और बौद्धिकता हावी होती दृष्टिगत होती हैं। वर्तमान में जीना, अपने अस्तित्व की खोज करना ही जीवन है, इस जीवन के सत्य की चंद्रकांता ने अपने उपन्यासों में उद्घोषणा की हैं।

1.6.17 क्रांति त्रिवेदी :

क्रांति त्रिवेदी के उपन्यासों की श्रृंखला बड़ी लंबी हैं - 'न की हार', 'अंतिमा', 'समर्पण', 'स्वयंवरा', 'ओस की बूँद', 'कथा अनंता', 'दीप्त प्रश्न', 'अशेष', 'मोहभंग', 'कृष्णभंग', 'फूलों का सपना',आदि।

'कथा अनंता' में क्रांति त्रिवेदी ने नारी की सूक्ष्म अनुभूतियों को मार्मिकता से संस्पर्श किया है। इस संदर्भ में कथन द्रष्टव्य है - "मेरे विचार में नारी एक नदी की तरह है। एक बिंदु में जन्म लेकर वह निरंतर विस्तार पाती रही है। अपने मान-अपमान, पीडा-प्रसन्नता सब समेटे वह निरंतर कुछ देती आगे वढ़ती है, स्वयं विस्मृत होती रहती है, संसार के कलेवर को पुष्ट करती हुई तिरोहित हो जाती है।"[73] 'अशेष' उपन्यास में आत्मनिर्भरता का जीवन जीनेवाली एक सरला नारी-मंजरी की अंतर्व्यथा व्यंजित की गयी है।

नारी की पीड़ा, वेदना, करूण, व्यथा को वाणी प्रदान करनेवाली क्रांति त्रिवेदी श्रेष्ठ महिला उपन्यासकार हैं।

1.6.18 मालती परूलकर :

मालती परूलकर का हिंदी साहित्य में विशिष्ट स्थान है। उनकी औपन्यासिक कृतियाँ हैं - 'वाली' (1961), 'इन्नी' (1974), 'मुक्ता' (1978), 'जहाँ पौ फटनेवाली है' (1981) आदि।

'वाली' में नायक-नायिका के मिलन-विरह की स्थूल घटनाओं को अंकित

किया गया हैं, तो 'इन्नी' उपन्यास में प्रेम-संबध में आत्मीयता का गंध न मिल्ने से उसे निरर्थक माननेवाली एक मध्यवर्गीय नारी के अंतर्दवंद्व की कथा है। 'मुक्ता' निरर्थक होते मानवीय संबंधों की प्रतिध्वनि हैं। चुकते मानवीय रिश्तें तथा भोग के स्तर पर बनते नए अनाम रिश्तें उपन्यास में चित्रित हैं, किंतु आत्मपरक शैली के बावजूद कथ्य की अभिप्रेत विश्वसनीयता प्रकट नहीं होती। शारीरिक मिलन के दृश्यों को संकेत शैली में व्यक्त किया है। आत्मकथात्मक शैली में लिखित 'जहाँ पौ फटनेवाली है' उपन्यास में वर्तमान पारिवारिक, राजनीतिक, सामाजिक स्थितियों का अंकन हैं। इसमें व्यापक मानवीय संवेदना और समर्थ भाषा शैली आद्योपांत दृष्टिगोचर होती है।

भ्रष्टाचार ग्रस्त राजनीति, नारी-शोषण, अस्पृश्यता समस्या इत्यादी समकालीन जीवन की समस्याओं को संवेदना के साथ संस्पर्श करते हुए लीक से हटकर लेखन करनेवाली मालती परूलकर हिंदी महिला उपन्यासकारों में अपना अलग महत्व रखती हैं।

1.6.19 मीनाक्षी पुरी :

मीनाक्षी पुरी कृत उपन्यासों में 'बैठक की बिल्ली' (1973), 'जाने पहचाने अजनबी' (1977), 'देश निकाले' (1979), 'सात फेरे अधूरे' (1982) आदि हैं। 'बैठक की बिल्ली' उपन्यास में विवाह और वर के संबंध में लडकियों और उनके माता-पिता का दृष्टिकोण अंकित हैं। 'जाने पहचाने अजनबी' उपन्यास में विदेश में स्थित भारतीय नारी के खुले व्यवहार का चित्रण है। इसमें प्रेम और विवाह के बदलते नैतिकताविहीन, बंधनरहित संदर्भो का उद्घाटन मीनाक्षी पुरी ने किया हैं।

1.6.20 सुनीता जैन :

सुनीता जैन की औपन्यासिक कृतियाँ हैं - 'विंदु' (1977), 'अनुगूँज' (1977), 'मरणातीत' (1977) आदि। 'विंदु' उपन्यास में समाज के प्रति संघर्षशील और अपने व्यक्तित्व का स्वयं-निर्माण करने पर भी सामाजिक बंधनों में बँधी नायिका विंदु का चरित्र चित्रित हैं। छोटे-छोटे पल और घटनाओं को गहन अर्थवत्ता, फ्लैश बैक पद्धति, कसा हुआ

शिल्प इस उपन्यास की विशेषताएँ हैं। 'अनुगूँज' और 'मरणातीत' उपन्यासों में प्रेम के परिवर्तीत स्वरूप को लेखिका ने शद्धवद्ध किया हैं।

कथा की काव्यात्मकता, कसा हुआ शिल्प, संवेदनाओं का रोमहर्षक संस्पर्श, भावनाओं की शीतल छाया आदि विशेषताओं के कारण सुनीता जैन का अपना विशिष्ट स्थान हैं।

1.6.21 मृणाल पांडे (1946) :

मृणाल पांडे एक उपन्यासकार होने के साथ-साथ एक आलोचक भी है। इसी कारण उनके उपन्यासों में बुद्धि-तत्त्व की प्रधानता दृष्टिगत होती हैं।उनके उपन्यास हैं- 'विरूद्ध' (1977), 'पटरंगपुर पुराण' (1988) आदि। उनके 'विरूद्ध' उपन्यास में हृदय की कोमल वृत्तियों और मार्मिक संवेदनाओं की अपेक्षा बौद्धिकता की प्रधानता हैं। 'पटरंगपुर पुराण' उपन्यास लोक-जीवन की भावभूमि पर आधृत घुमावदार कथा और लोक नाट्य शैली के संस्पर्श के कारण शिल्प-विधि की मौलिकता की उद्घोषणा करता हैं। इसमें लोक-जीवन के नीरस वर्णनों का आधिक्य हैं।

1.6.22 प्रतिमा वर्मा (1939) :

प्रतिमा वर्मा के उपन्यास हैं - 'गलियाँ-गलियारे', 'अपने बेगाने', 'सुवह होती है शाम होती है' और 'उसका आकाश' आदि। 'अपने-बेमाने' उपन्यास में मानवीय संबंधो का व्यापक चित्रांकन हैं। इसमें प्रेम-त्रिकोण की परिणति अंततोगत्वा सुखांत कथा के रूप में परिवर्तीत न होती है। 'गलियाँ-गलियारे' में किशोर वय की भावुकता, आधुनिकता के दंभ और जीवन के रोचक यथार्थवादी घटनाओं का चित्रण हैं। इसमें प्राचीन परंपराओं को तिलांजलि देने वालों पर अंत्यत तीव्र व्यंग्य कसा हैं।

1.6.23 सिम्मी हर्षिता (1940) :

सिम्मी हर्षिता के औपन्यासिक कृतियाँ हैं - 'संवंधों के किनारे' (1984) 'यातना शिविर' (1990) आदि। 'संवंधों के किनारे' में जीवन-चक्र का विश्लेषण हैं। जीवन विना रूके निरंतर चलता रहता है, जो संवंधों के वनने या टूटने पर भी रूकता नहीं। जव

समय चल पडता है। नायिका बुढापे की देहलीज पर बैठ कर बीते जीवन-क्रम का पर्यावलोकन करती रहती है।

1.6.24 प्रभा सक्सेना :

प्रभा सक्सेना के 'टुकड़ो में बेटा इंद्रधनुष' (1980) में स्त्री-पुरूष संबंध की उलझनों का चित्रांकन हैं। नारी-मन की पीड़ा और त्रासदी के साथ ही देह का शोषण इस उपन्यास में चित्रित है, साथ ही जीवन की नैतिक अनैतिकता के बदले क्षण की संवेदना को महत्ता प्रदान की गई हैं।

1.6.25 मालती जोशी (1934) :

मालती जोशी के उपन्यास रचनामृत है - 'सहचारिणी' (1998), 'राग-विराग' (1985), 'विश्वास गाथा' आदि। 'सहचारिणी' उपन्यास में संवेदनशील नारी की मर्मव्यथा अंकित हैं। इसमें दु:ख से मँजने पर मन दर्पण-सा निर्मल हो जाता है, यही प्रतिध्वनित होता है। 'समर्पण का सुख' उपन्यास में पढ़ी-लिखी, अभावग्रस्त नारी की कथा है, जो बेकार, अनपढ़ और अकर्मण्यशील पति में आत्मविश्वास जगाती है और उसके प्रति पूरे विश्वास से समर्पण कर सच्चा सुख प्राप्त करती है। युवक-युवतियों की स्थिति का विवाह के दवारा 'गोपनीय' उपन्यास में चित्रण हैं। 'ऋणानुबंध' उपन्यास में बाल-विधवा की अनैतिक विकलांग संतती के कारण निर्माण एक विषम पारिवारिक स्थिति का चित्रण लेखिका करती है। 'चाँद अमावस्या का' उपन्यास में एक विधवा की विवाह हेतु स्वीकृति के लिए अनंत काल तक प्रतीक्षा करने वाले एक पुरूष का प्रेम लिपिबद्ध है। इसका अंत रोमांटिक है।

मालती जोशी जी ने पारिवारिक रिश्तों के उत्थान-पतन की कथा विश्वसनीयता और सच्चाई के साथ प्रस्तुत की हैं। वह मानवीय संबंधों की कथा आत्मकथात्मक शैली में सुनाती है। घर-परिवार से कथ्य को उठाकर रोचक एवं प्रभावशाली शैली में उपन्यास साहित्य-कृतियों में प्रस्तुत करना मालती जोशी की विशेषता है।

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR.

1.6.26 नमिता सिंह :

नमिता सिंह की औपन्यासिक कृतियाँ हैं-'अपनी सलीबें' (1995), 'निष्कवच' (1995) आदि। 'अपनी सलीबें' उपन्यास में यथार्थ के कठोर एवं भयावह स्तर पर आधृत संवेदनाओं की अत्यंत तीव्र प्रस्तुति हैं, जो सहृदय पाठकों को बुद्धि और हृदय दोनों स्तरों पर उद्वेलित करती हैं। साहित्य की कहानी विधा में प्रतिष्ठित नमिता सिंह को उपन्यास साहित्य जगत् में विशिष्ट स्थान 'अपनी सलीबें' के कारण ही प्राप्त हुआ।

1.6.27 राजी सेठ (1935) :

ख्यातनाम लेखिका राजी सेठ का 'तत्सम' (1983) उपन्यास भारतीय विधवा की मानसिकता को लेकर लिखा हुआ नायिका प्रधान उपन्यास है। इस उपन्यास की नायिका वसुधा स्वयं को संसार-अभागिनी मानती रहती है। वसुधा बड़ी मुश्किलों से पुनर्विवाह करके अपने जीवन के दुख को सुख में परिवर्तीत करती है। इसमें नारी-मन की सुंदर झाँकियाँ प्रस्तुत हैं।

1.6.28 अनामिका :

अनामिका के उपन्यास 'पर कौन सुनेगा' (1983) में साधारणत: परंपरावादी समाज सुनने का आदी नहीं है, उस जर्जर सामाजिक रूढ़ियों और दुरूह पूर्वाग्रहों के जाल में फँसी वर्ग विशेष-वारवनिताओं के वर्ग की फरियाद को सुनाया हैं। जन्म से जाति निर्धारित होनेवाले समाज में व्यक्ति-विकास में कितनी कठिणाईयाँ होती है, इसका चित्रांकन इस उपन्यास में है। महानगरों में आदमी अपने अतीत से पीछा छुड़ाकर दूसरों में घुल-मिल सकता हैं, किंतु छोटे देहातों में आदमी व्यक्तिगत जीवन के संस्कार-संयम होने के वावजूद पीढियों तक इस अभिशप्त जाल से वाहर न निकलने के लिए विवश हैं।

1.6.29 डॉ॰ सुधा श्रीवास्तव :

डॉ॰सुधा श्रीवास्तव के 'वियावन में उगते किंशुक' (1985) इस समस्या-प्रधान उपन्यास में वर्तमान दोहरेपन से ग्रस्त जीवन का विश्लेषण है। दोहरी संस्कृति, दोहरे मापदंड, दोहरी मानसिकता और दोहरे विचार व्यक्ति को दविधाग्रस्त एवं तणावयुक्त किस प्रकार

बनाते हैं, इस का चित्रण इस उपन्यास में हैं।

1.6.30 संतोष शैलजा :

संतोष शैलजा द्वारा लिखित 'कनक छड़ी' (1990) उपन्यास हिमाचल की पृष्ठभूमि पर आधृत आँचलिक उपन्यास है। पात्रों के बोल-चाल, रहन-सहन, संस्कार और पूर्वाग्रह आदि के चित्रण द्वारा वास्तविक लोकजीवन को उपन्यास में अंकित किया गया है। इस संदर्भ में एक कथन द्रष्टव्य है - "लाल फूलदार 'फुलकारी' से सजी पालकी 'शाहजी' के आँगन में आ खड़ी हुई तो तारा को घेरकर चलती हुई औरतों ने दर्द भरी आवाज में गाया : "साडा चिड़ियाँ दा चंबा ते बाबुल असां उड्ड जाना....." ।[74]

1.6.31 स्वर्ण मलहोत्रा :

स्वर्ण मलहोत्रा का 'अपाहिज' (1987) एक मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। इसमें अपाहिज की मन:स्थिति को विश्लेषित कर स्वर्ण मलहोत्रा ने हिंदी साहित्य को एक नई दिशा प्रदान की है। कुंठा एवं हीनता के दलदल में फँसते प्रो॰ सत्येंद्र के लिए एक बालिका प्रकाश-स्तंभ सिद्ध होकर उसमें आत्मविश्वास जागृत होता है।

1.2.32 चित्रा मुद्गल (1944) :

चित्रा मुद्गल के 'एक जमीन अपनी' (1985) उपन्यास में विज्ञान जगत् की आज की संघर्षशील नारी का चित्रांकन है। इसमें निरंतर रीतती मानवीय संवेदना को अंकित करते निम्नवर्गीय जीवन का अध्ययन है, साथ ही नए तेज जमाने में जीवन की मजबूरियों के तहत अपसंस्कृति की दलदल में धँसते जाते आधुनिक मानवीय मूल्यों की स्तंभित करनेवाली तसवीर गहरी संवेदना के साथ चित्रित हैं। इसमें इक्कीसवीं सदी की ओर तेजी से उन्मुख होती भारतीय समाज की मानसिकता का जागरूकता और संवेदनशीलता का अंकन हैं। संवेदनशीलता का उदाहरण देखे - "साँवले पड़ते बादलों को कंधे पर उठाए हवा अचानक उग्र हो उठी।"[75]

1.6.33 ऋता शुक्ल :

ऋता शुक्ल के 'अग्निपर्व' (1990) उपन्यास में गांधीजी के आदर्शों और

मूल्यों को कथ्य और चरित्रों में ढालते हुए उनके मूल्यों की विघटन-कथा लिपिवद्ध हैं। उपन्यास के संदर्भ में समीक्षा द्रष्टव्य है - "कहीं-कहीं वर्णन शैली में रेणु की आँचलिकता की छौंक लगाने की भद्दी कोशिश की गई है। 'कमला' में आप शरत् के नारी पात्रों की विकृत झलक तलाश सकते हैं। भाषा में 'माटी की गंध' पैदा करने के लिए गरीब-अनपढ़ और खासकर नारी-पात्रों के मुँह से ठेठ भोजपुरी में संवाद कहलवाए गए हैं।"[76]

1.6.34 गीतांजलि श्री :

गीतांजलि श्री के 'माई' (1993) इस संस्मरणात्मक या रेखाचित्रपरक लघु उपन्यास में नारी विषयक पुरानी मान्यताओं और मूल्यों का चित्रांकन हैं। इसका केंद्रीय चरित्र-माई सास की रूढ़िवादिता के कारण आजीवन संत्रस्त रहती है। यह उपन्यास महिला उपन्यास लेखन के क्षेत्र में गीतांजलि श्री की किसी विशिष्ट प्रदेय का उद्घाटन नहीं कर सका।

1.6.35 बिंदु सिन्हा :

बिंदु सिन्हा की औपन्यासिक कृतियों में 'सागर पाखी' (1975), 'उनचास पवन' (1975), 'टूटते महल के खंभे' (1983), 'आकाश' (1988), 'अवशेष'(1988) आदि हैं।

'सागर पाखी' उपन्यास स्वतंत्र भारत में स्वप्नदर्शी स्वतंत्रता-सेनानियों की अवस्था को संस्पर्श करता है। स्वतंत्रता संग्राम के लिए करिअर एवं भविष्य की चिंता में सुलोचना मेड़िकल कॉलेज नहीं छोड़ती, किंतु स्वतंत्रता यज्ञ में प्राणाहुति के लिए स्वरूप कटिबद्ध हैं। परंतु स्वतंत्रता के वाद सुलोचना गौरव प्राप्त करती है, किंतु स्वरूप को उपेक्षा का दंश सहना पड़ता है। स्वतंत्रता सेनानियों को स्वतंत्र भारत में जो अवहेलना झेलनी पड़ी, उसका इस उपन्यास में मर्मस्पर्शी चित्रण है। विंदु सिन्हा ने सुंदर प्रतीकात्मक शैली में अपनी आत्मानुभूति की अभिव्यंजना की है।

उपर्युक्त डॉ॰ राज वुद्धिराजा के समकालीन महिला उपन्यासकारों के अतिरिक्त अन्य भी महिला उपन्यासकार कार्यरत रही हैं ज्योत्स्ना मिलन - 'अपने साथ'

(1976), मणिका मोहिनी - 'पारू ने कहा था' (1979), कांता भारती - 'रेत की मछली' (1975), शुभा वर्मा - 'फ्री लांसर' (1981), मीना शर्मा - 'अनाम प्रसंग'(1995), अन्नपूर्णा- 'परत-दर-परत' (1994), वीणा सिंहा - 'अंतर्यात्रा' (1996), मधु मादुडी - 'कालचक्र' (1993), 'ज्वार' (1993), मधु राजवंशी - 'अतीत' (1995), मानवी - 'दायित्व'(1995), विमला गुप्ता - 'श्वेता' (1995), 'पंचतप्ता' (1995), विवर्त्त' (1995), सरोजनी प्रीतम - 'बिके हुए लोग' (1995), कांता डोगरा- 'तपिश' (1995), इंदिरा दीवान - 'लावा' (1995), 'केतकी के प्रोफेसर' (1995), पद्मा सचदेव - 'नौशीन' (1995), कुर्रतुल एन० हैदर - 'तीन उपन्यास' (1995), कमल कुमार - 'अपार्थ' (1986), 'आवर्तन' (1994), कुसुम कुमार - 'हीरामन हाईस्कूल' (1989), कुसुम गुप्ता - 'इन्सानों का व्यापार' (1976), 'खाई' (1977), 'ईर्ष्या का ज्वालामुखी' (1978), 'एक संबंध की मौत' (1980), 'दलदल' (1985), 'गोरखधंधा' (1985), 'पतझड़ के बाद' (1987), 'दाँव पर लगी जिंदगी' (1987), इंदु जैन - 'एक रात की बात' (1979), 'दुर्घटना' (1985), मृदुला सिन्हा - 'ज्यों मेहंदी को रंग' (1981), 'नई देवयानी' (1984), उषा माहेश्वरी - 'सुबह का सूरज' ; वैदेही सिन्हा - 'मुर्शिदाबाद की आखिरी शाम', डॉ० शकुंतला पांडेय - 'स्वर्ण मल्लिका', कांता सिन्हा - 'अतृप्ता', 'सूखी नदी का पुल', 'तिरस्कार', 'सुप्रभात', पुष्पा सक्सेना - 'वह साँवली लड़की', कृष्ण वाजपेयी-'अजायबघर', इंदिरा राय- 'दिवार पर टँगी तस्वीर', इंदिरा नुपूर- 'मंजिल और मौत', ऊषा चौधरी- 'बहता जीवन मुड़ती धारा', श्रीमती प्रभाकिरण- 'आत्म साक्षात्कार', प्रीतो ठाकुर - 'सुनहरी रेत', उर्मिला शर्मा- 'अन्नपूर्णा', शांति कुमारी वाजपेयी - 'अरे यह कैसा मन', डॉ० इंदिरा दीवान- 'उर्मिला', बीना देवी - 'पुण्यभूमि आँखे खोलो', मिनाक्षी पूरी - 'तश्तरी में तूफान', गायत्री वर्मा - 'सधे कदम', स्नेह मोहनीश - 'कल के लिए', प्रेमलता- 'अश्लेषा', सुधा- 'सही आदमी', 'कातर धूप', 'सूरज ढकनेवाले मेघ', उत्तम परमार -'मर्यादा', 'जसवंगढ़', 'उत्थान', कुसुम - लता - 'दुर्गा', सुषमा अग्रवाल - 'अपना रास्ता', इंद्रा स्वप्न - 'वैशाली सुंदरी', उषा यादव - 'प्रकाश की ओर' (1984), 'धुप का टुकड़ा' (1991), 'एक और अहल्या' (1991), 'आँखों का आकाश' (1995), 'कितने नीलकंठ' (1998), विजया

धीर - 'मधूलिका' आदि।

डॉ० राज बुद्धिराजा के समकालीन हिंदी महिला उपन्यासकारों का साहित्य समद्ध रहा हैं। वर्तमान सामाजिक विसंगतियों से प्रसूत घुटन, टूटन, अकेलापन, अंत: संघर्ष आदि का अत्यंत मर्मस्पर्शी चित्रण महिला उपन्यासकारों ने अपने उपन्यास में किया हैं। समस्याओं के गर्त में फँसी नारी का बहुरंगी और बहुआयामी चित्रण इन लेखिकाओं के कलम से निसृत हुआ हैं। अपने अस्तित्व -अस्मिता को खोजती नारी को अपनी औपन्यासिक कृतियों में स्थान प्रदान किया है।

इन महिला उपन्यासकारों ने मानवीय संवेदना-सुखात्मक संवेदना और दुखात्मक संवेदना के संवर्धन में संस्मरणीय योगदान दिया हैं। विवेच्य कालावधि में महिला उपन्यास लेखन तीव्र गति से चलता रहा। जिसके परिणामस्वरूप संवेदना को तीव्रतर बनानेवाले उपन्यासों का निर्माण महिला उपन्यासकारों ने किया। इन महिला उपन्यासकारों ने मानव-मूल्यों में परिवर्तन कर नए मानव-मूल्यों की स्थापना की हैं। इन्होंने पुराने मानव मूल्यों को नकारते हुए नए मानव मूल्यों को स्थापित कर उनका संवर्धन किया हैं।

1.7 समकालीन महिला उपन्यासकारों में डॉ० राज बुद्धिराजा का स्थान :

समकालीन महिला उपन्यासकारों में डॉ० राज बुद्धिराजा का स्थान क्या हैं ? इसे जानने के लिए उपर उल्लेखित उनकी समकालीन महिला उपन्यासकारों से तुलना करना आवश्यक हैं। मन्नू भंड़ारी ने अपने पति के साथ मिलकर नूतन प्रयोग करते हुए 'एक इंच मुस्कान' उपन्यास का सृजन किया। इस तरह का भले ही राज जी न कर सकी हो किंतु मन्नू भंड़ारी की तरह उनकी रचनाएँ मनोवैज्ञानिक धरातल पर आधृत हैं, स्त्री-पुरूष संबंधों के बासीपन से मुक्त हैं। मेहरून्निसा परवेज की तरह राज जी के उपन्यासों में मानव-मूल्यों तथा मानव-धर्म के प्रति आग्रह दिखाई देता हैं। राज के लेखन की प्रधान भूमिका पीड़ित एवं शोषित मनुष्य के प्रति संवेदनशील मनुष्य की ही रही है। राज जी ने मनुष्य की घुटन, छटपटाहट, कुंठा, पीड़ा आदि को उपन्यास में स्थान दिया, किंतु मृदुला गर्ग जैसे सेक्स के उन्मुक्त चित्र को अंकित करने से वची रही। उनके उपन्यासों में मंजुल भगत के सदृश्य

संघर्षशील, कर्मण्यवादी नारी के चित्र कॅनवास से उतारे गए हैं।

राज जी का उपन्यास जगत् शशिप्रभा शास्त्री - सा विस्तृत न होने पर भी उसी सक्षमता के साथ नारी के अंतर्मन को संस्पर्श करते हुए यथार्थ चित्र अंकित किए हैं। उनके उपन्यासों में मनोरंजन तत्व की प्रधानता, पहाड़ी चित्रकला-सी शैली का अभाव होने के बावजूद शिवानी-सी विधायिनी कल्पना के द्वारा नारी की चित्तवृत्तियों का सजीव दृश्य दृष्टिगोचर होता है। राज ने कुसुम अंसल के समान वर्तमान समसामायिक समस्याओं को मानवीय संवेदनशीलता के साथ औपन्यासिक कृतियों में उठाया है "..... एक जिम्मेदार लेखक को शोषितों के लिए कलम उठाने पर बाध्य होना पड़ता है। अन्यथा इतिहास उसे माफ नहीं करेगा।"77 तथा "तमाम समस्याओं, तमाम अन्याय, बहुतेरी जातियों, तमाम लोकाचारों से युक्त देश के लेखकों की सामग्री देश और उसके मनुष्यों से नहीं मिलती, इससे अधिक आश्चर्य की बात और क्या हो सकती है ?"[78] इन उद्धरणों को राज जी पर लागू करने पर पता चलता है कि राज जी समसामायिक परिवेश के प्रति सजग लेखिका थी और उसकी अभिव्यंजना के प्रति भी पूर्णत: सक्षम थी।

कृष्णा सोबती ने 'जिंदगीनामा' उपन्यास में अपनी मातृभूमि की आँचलिक झाँकिया प्रस्तुत कर मातृभूमि से उऋण होने का प्रयास किया हैं, उसी तरह राज जी ने अपने जीवन के व्यष्टिगत अनुभूति को साहित्य कृतियों में लिपिवद्ध किया हैं। राज जी के उपन्यासों में नासिरा शर्मा-सी सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता को महसूस किया जा सकता हैं। मैत्रेयी पुष्पा के सदृश्य ग्राम्य आँचलिकता को राज जी अपने उपन्यासों नें चित्रित न कर सकी। किंतु मैत्रेयी पुष्पा-सी चिरंतन स्मरणीय महिला चरित्रों का निर्माण राज जी ने कुशलता से किया हैं। सूर्यबाला के उपन्यासों में जीवन के कोमल-गंभीर पक्ष, मानवीय मूल्यों के प्रति आशावाद दिखाई देता हैं, वही राज जी के उपन्यासों में गुँजायमान होता प्रतीत होता हैं। दिनेशनंदिनी डालमिया, दीप्ति खंडेलवाल, निरूपमा सेवती, चंद्रकांता के समान राज जी के उपन्यासों में स्वानुभूतिपरक जीवन-संघर्षो से प्रसूत यथार्थ अंकित है। क्रांति त्रिवेदी, मालती परूलकर, मीनाक्षी पुरी, सुनीता जैन, प्रतिमा वर्मा, सिम्मी हर्षिता, मृणाल पांड़े आदि लेखिकाओं

के सदृश्य राज के उपन्यासों में मानवीय संबंधों को संवेदनशीलता के साथ उठाते हुए समकालीन समस्याओं को यथार्थ वाणी प्रदान की हैं। मालती जोशी ने पढ़ी-लिखी नारी की मर्मव्यथा को अंकित किया है, तो राज जी के उपन्यासों में उसी नारी की मर्मव्यथा कथा बनकर सम्मुख उपस्थित हुई हैं। .नमिता सिंह, राजी सेठ, अनामिका, डॉ० सुधा श्रीवास्तव, संतोष शैलजा, स्वर्ण मलहोत्रा, चित्रा मुद्गल, ऋता शुक्ल, गीतांजलि श्री, बिंदु सिन्हा आदि उपन्यासकारों ने समकालीन परिवेश से विविध समस्याओं को उठाकर अपनी कृतियों में अनुकूल स्थान प्रदान किया हैं। वह समस्यांएँ किसी न किसी रूप में राज जी की उपन्यास कृतियों में विद्यमान हैं।

डॉ० राज बुद्धिराजा ने समसामायिक परिवेश तथा समकालीन उपन्यासकारों पर दृष्टिपात करते हुए अपनी मौलिक उपन्यास कृतियों का निर्माण किया। जो साहित्यकार स्वयं के आत्मानुशीलन में लगे रहते है, परिवेश के प्रति सजग नहीं रहते ; वे परिणामस्वरूप काल के प्रवाह में मिट जाते हैं। भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त बांगला साहित्यकार महाश्वेता देवी का कथन इस संदर्भ में द्रष्टव्य है - "लेखक लोग प्रत्यक्ष को देखकर भी नहीं देख रहे हैं। इसका नतीजा हुआ है, अच्छे पाठकों के मन में उनका भी प्ररित्याग हो गया है।"[79] अत: जो लेखक समसामायिक परिवेश के प्रति कर्तव्यनिष्ठ नहीं रहता उसे जीवन-काल में अंतिम न्याय के लिए उपस्थित रहना पड़ता है। "इसी से सामर्थ्य के अनुसार मानव की कथा ही लिखी, जिससे कि सामना होने पर उसके लिए लज्जित न होना पड़े, क्योंकि लेखक को जीवन-काल में ही अंतिम न्याय के लिए उपस्थित होना पड़ता है और जावावदेही की जिम्मेदारी रह जाती है।"[80] डॉ० राज बुद्धिराजा भी एक जवावदेही, जिम्मेदार साहित्यकार होने के कारण अपने साहित्य में समकालीन परिवेश के प्रति कर्तव्यता का पालन करती रही हैं।

स्वानुभूति की अभिव्यक्ति, नूतन मानवीय मूल्यों का समर्थन, समसामायिक परिवेश के प्रति कर्तव्यनिष्ठा, मनोविज्ञान पर आधृत पात्र-चरित्र चित्रण, मानवीय संवेदनशीलता, सामाजिक परिवर्तन के लिए प्रयत्नशील, यथार्थ सजीव चित्रण आदि समकालीन

महिला उपन्यासकारों की सभी विशेषताओं को डॉ० बुद्धिराजा के उपन्यासों में देखा जा सकता है। इन्हीं विशेषताओं के कारण डॉ० राज बुद्धिराजा उनके समकालीन महिला उपन्यासकारों में शीर्षस्थ-मुकुट-शिरोमणि के अपरिवर्तनीय ध्रुव स्थान की अधिकारिणी हैं।

निष्कर्ष :

उपर्युक्त अध्ययन से निष्कर्ष रूप में जो तथ्य सामने आते हैं वे इस प्रकार है -

1. डॉ० राज बुद्धिराजा का जन्म 16 मार्च 1937 ई० में अग्निहोत्री परिवार में लाहौर के अनारकली बाजार में हुआ।
2. डॉ० राज बुद्धिराजा बहुमुखी एवं बहुआयामी व्यक्तित्व संपन्न महिला साहित्यकार हैं।
3. डॉ० राज बुद्धिराजा ने विविध विधाओं में लेखन कार्य किया है।
4. डॉ० राज बुद्धिराजा को प्राप्त-मान सम्मान एवं पुरस्कार उनके कार्यों की रसीद हैं।
5. अब तक राजजी ने छ : उपन्यासों का सृजन किया।
6. डॉ० राज बुद्धिराजा के समकालीन महिला उपन्यासकारों का लेखन हिंदी साहित्य जगत् की अनन्यसाधारण उपलब्धि है।
7. समकालीन महिला उपन्यासकारों में डॉ० राज बुद्धिराजा का स्थान शीर्षस्थ है।
8. राज जी के ('शंखनाद' के अतिरिक्त) सभी उपन्यास नारी को केंद्र में रख कर लिखे गए नायिका प्रधान उपन्यास हैं।
9. 'हिंदी-जापानी शब्दकोश' का निर्माण करनेवाली प्रथम भारतीय महिला साहित्यकार है डॉ० राज बुद्धिराजा।
10. डॉ० राज बुद्धिराजा ने सभी लघु-उपन्यासों का निर्माण किया हैं।
11. डॉ० राज बुद्धिराजा भारतीय साहित्यतिहास में विदेशी सर्वोच्च पुरस्कार प्राप्त एकमेवाद्वितीय साहित्यकार है।

संदर्भ सूची :

1. नेमिचंद जैन-वदलते परिप्रेक्ष्य : सामयिकता की समस्या, पृ० 65
2. संपा० अशोककुमार महेश्वरी-मासिक पत्रिका 'राधा कृष्ण प्रकाशन - समाचार', अक्तूवर -2002, पृ० 4
3. डॉ० राज बुद्धिराजा - कथनी-करनी एक समान, पृ० 30
4. वही, पृ० 26
5. वही, पृ० 21
6. वही, पृ० 18
7. वही, पृ० 14
8. वही, पृ० 18
9. संपा० डॉ०पुष्पलता वर्मा एवं ज्ञानेश्वर मुळे-भारत-जापान की सांस्कृतिक सेतु,पृ० 66
10. वही, पृ० 80
11. वही, पृ० 92
12. वही, पृ० 60
13. वही, पृ० 60
14. वही, पृ० 85
15. वही, पृ० 60
16. वही, पृ० 107
17. वही, पृ० 105
18. वही, पृ० 85
19. वही, पृ० 46
20. वही, पृ० 49
21. डॉ० राज बुद्धिराजा - कथनी-करनी एक समान, पृ० 21
22. संपा० डॉ०पुष्पलता वर्मा एवं ज्ञानेश्वर मुळे-भारत-जापान की सांस्कृतिक सेतु,पृ० 95

23. डॉ० राज बुद्धिराजा - हाशियेपर, पृ० 17

24. संपा० डॉ०पुष्पलता वर्मा एवं ज्ञानेश्वर मुळे-भारत-जापान की सांस्कृतिक सेतु, पृ० 60

25. डॉ० राज बुद्धिराजा - हाशियेपर, पृ० 94

26. डॉ० राज बुद्धिराजा - उत्तरोत्तर, पृ० 28

27. वही, पृ० 99

28. संपा० डॉ०पुष्पलता वर्मा एवं ज्ञानेश्वर मुळे-भारत-जापान की सांस्कृतिक सेतु, पृ०80

29. डॉ० राज बुद्धिराजा - उत्तरोत्तर, पृ० 29

30. संपा० डॉ० पुष्पलता वर्मा एवं ज्ञानेश्वर मुळे-भारत-जापान की सांस्कृतिक सेतु, पृ०97

31. डॉ० राज बुद्धिराजा - उत्तरोत्तर, पृ० 71

32. संपा० डॉ०पुष्पलता वर्मा एवं ज्ञानेश्वर मुळे-भारत-जापान की सांस्कृतिक सेतु, पृ० 97

33. डॉ० राज बुद्धिराजा - उत्तरोत्तर, पृ०20

34. वही, पृ० 33

35. संपा०डॉ०पुष्पलता वर्मा एवं ज्ञानेश्वर मुळे-भारत-जापान की सांस्कृतिक सेतु, पृ०46

36. डॉ० राज बुद्धिराजा - उत्तरोत्तर, पृ०45

37. संपा०डॉ०पुष्पलता वर्मा एवं ज्ञानेश्वर मुळे-भारत-जापान की सांस्कृतिक सेतु, पृ० 51

38. वही, पृ० 105

39. वही, पृ० 215

40. वही, पृ० 179

41. वही, पृ० 60

42. डॉ० राज बुद्धिराजा - प्रश्नातीत, पृ० 76

43. डॉ० राज बुद्धिराजा - कन्यादान, पृ० 9

44. डॉ० राज बुद्धिराजा - हर साल की तरह, पृ० 94

45. डॉ० राज बुद्धिराजा - रेत का टीला, पृ० 76

46. वही, पृ० 25

47. संपा० डॉ०पुष्पलता वर्मा एवं ज्ञानेश्वर मुळे-भारत-जापान की सांस्कृतिक सेतु, पृ०145

48. डॉ० राज बुद्धिराजा - शंखनाद, पृ० 8

49. मन्नू भंडारी एवं राजेंद्र यादव - एक इंच मुस्कान, पृ० 314

50. मन्नू भंडारी - महाभोज, पृ० 158

51. मेहरून्निसा परवेज - अकेला पलाश, पृ० 96

52. मृदुला गर्ग - 'वंशज' की भूमिका से उधृत

53. मृदुला गर्ग - वंशज - पृ० 23

54. मंजुल भगत - अनारो, पृ० 48

55. मंजुल भगत - टूटता हुआ इंद्रधनुष, पृ० 34

56. शशिप्रभा शास्त्री - वीरान रास्ते और झरना, पृ० 87

57. शशिप्रभा शास्त्री - क्योंकि, पृ० 33

58. शिवानी - कृष्णकली, पृ.127

59. शिवानी - श्मशान चंपा, पृ० 171

60. कुसुम अंसल - अपनी-अपनी यात्रा, पृ० 37

61. संपा० डॉ० महीप सिंह - 'हिंदी उपन्यास : समकालीन परिदृश्य' में संग्रहीत कमलेश सचदेव का आलेख, पृ० 166

62. कुसुम अंसल - उसकी पंचवटी, पृ० 85

63. आजकल - मई 1960, पृ० 43

64. डॉ० घनश्याम 'मधुप' - हिंदी लघु उपन्यास, पृ० 176

65. नासिरा शर्मा - शाल्मली, पृ० 166

66. आजकल-मई-जून 1995 में संग्रहीत आलेख 'नए लेखकों का संदर्भ', पृ० 20

67. प्रभा खेतान - छिन्नमस्ता, पृ० 220

68. राष्ट्रीय सहारा - शुक्रवार 18 नवंबर 1994 पृ० 1

69. दिनेशनंदिनी डालमिया - कंदील का धुआँ - बंद झरोखे से, पृ० 9-10

70. दीप्ति खंड़ेलवाल - प्रिया, पृ० 151

71. निरूपमा सेवती - दहकन के पारए पृ० 17

72. चंद्रकांता - अंतिम साक्ष्य, पृ० 105

73. क्रांति त्रिवेदी - कथा अनंता, पृ० 2

74. संतोष शैलजा - कनक छड़ी, पृ० 18

75. चित्रा मुद्गल - एक जमीन अपनी, पृ० 239

76. जनसत्ता, 11 अगस्त 1991 पृ० 6

77. महाश्वेता देवी - अग्निगर्भ, पृ० 10

78. वही, पृ० 10

79. वही, पृ० 10

80. वही, पृ० 11